इकाई -1
काव्य/साहित्य : स्वरूप, तत्त्व, भारतीय प्रयोजन

अनुक्रम

1.1 उद्देश्य

1.2 प्रस्तावना

1.3 विषय - विवेचन

1.3.1 काव्य / साहित्य : स्वरूप

1.3.1.1 संस्कृत आचार्यों के काव्य-लक्षण

1.3.1.2 प्राचीन हिंदी आचार्यों के काव्य-लक्षण

1.3.1.3 आधुनिक हिंदी विद्वानों के काव्य-क्षण

1.3.1.4 पाश्चात्य विद्वानों के काव्य-लक्षण

1.3.1.5 निष्कर्ष

1.3.2 काव्य / साहित्य : तत्त्व

1.3.2.1 भाव तत्त्व

1.3.2.2 कल्पना तत्त्व

1.3.2.3 बुद्धि तत्त्व

1.3.2.4 शैली तत्त्व

1.3.2.5 निष्कर्ष

1.3.3 काव्य : प्रयोजन

1.3.3.1 संस्कृत आचार्य : काव्य प्रयोजन

1.3.3.2 प्राचीन हिंदी आचार्य : काव्य प्रयोजन

1.3.3.3 आधुनिक हिंदी विद्वान : काव्य प्रयोजन

1.3.3.4 निष्कर्ष

1.4 स्वयं - अध्ययन के लिए प्रश्न

1.5 पारिभाषिक शब्द, शब्दार्थ

1.6 स्वयं - अध्ययन प्रश्नों के उत्तर

1.7 सारांश

1.8 स्वाध्याय

1.9 क्षेत्रीय कार्य

1.10 अतिरिक्त अध्ययन के लिए

1.1 उद्देश्य :

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप,

1. काव्य (साहित्य) शब्द के अर्थ और स्वरूप से परिचित होंगे।
2. भारतीय एवं पाश्चात्य विद्वानों द्वारा बताए गए काव्य (साहित्य) के लक्षणों को पढकर साहित्य का स्वरूप समझने में सक्षम होंगे
3. काव्य (साहित्य) के विभिन्न तत्त्वों से परिचित होंगे।
4. काव्य प्रयोजनों से परिचित होंगे।
5. काव्य (साहित्य) के महत्त्व को समझ सकेंगे।

1.2 प्रस्तावना :

साहित्य के सम्यक अनुशीलन का कार्य साहित्यशास्त्र के अंतर्गत होता है। जिसमें साहित्य की विभिन्न विधाओं का शास्त्रीय दृष्टि से सांगोपांग विवेचन किया जाता है। 'शास्त्र' शब्द संस्कृत 'शास्' धातु से बना हुआ है, जिसका अर्थ है अनुशासन। साहित्यशास्त्र हमें साहित्य के विषय में अनुशासित करता है। साथ ही साहित्य निर्माण के नियमों की जानकारी भी प्रदान करता है। साहित्यशास्त्र के लिए 'काव्यशास्त्र', काव्यालोचन और काव्यमीमांसा जैसे शब्द भी प्रचलित है। प्राचीन काल में तो इसके लिए 'अलंकार शास्त्र' का भी प्रयोग होता था। कालांतर में इस शब्द की व्याप्ति संकुचित होती गयी और इसी स्थान पर साहित्यशास्त्र नाम रूढ होता चला गया।

विश्व की लगभग सभी भाषाओं के साहित्य में काव्यशास्त्र पर विचार हुआ है। अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से इसके भारतीय तथा पाश्चात्य दो भेद किए जाते हैं। भारतीय काव्यशास्त्र की परंपरा में उपलब्ध ग्रंथों के आधार पर भरतमुनि को काव्यशास्त्र का प्रथम आचार्य माना जाता है। उनका 'नाट्यशास्त्र' ग्रंथ

भारतीय काव्यशास्त्र का प्रथम ग्रंथ माना जाता है। अत: इसमें काव्यशास्त्र के विभिन्न अंगों का विवेचन-विश्लेषण मिलता है।

मनुष्य को उचित दिशा निर्देशन करने का काम काव्य के माध्यम से ही होता है। काव्य समाज की विभिन्न उलझनों को वाणी प्रदान करने का काम करता है। लेकिन किसी भी रचना को जन्म देते समय रचनाकार को साहित्यशास्त्र के नियमों का पालन करना अत्यंत आवश्यक होता है। आज हमारी भारतीय काव्यशास्त्रीय परंपरा अत्यंत समृद्ध और विकसित नजर आती है। इस परंपरा को अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से विभिन्न कालों में विभाजित किया गया है। पाश्चात्य काव्यशास्त्र की परंपरा भी बहुत ही पुरानी हैं। आरंभ में उसका विकास यूनान में हुआ और फिर रोम में । प्लेटो, अरस्तू, लौंजाइनस, होरेस तथा क्विंटीलियन इस प्राचीन परंपरा के निर्माता रहे हैं।

प्राचीन भारतीय ग्रंथों में काव्य के लिए 'वाङ्मय' शब्द का प्रयोग मिलता है। काव्य शब्द 'कवि' से प्रचलित है। साथ ही वह अंग्रेजी शब्द 'Poetry' का अनुवाद है। साहित्य अंग्रेजी शब्द 'Literature' का पर्यायवाची माना जाता है। जिसकी उत्पत्ति लैटिन शब्द Letter से हुई है। साहित्य शब्द का प्रयोग सातवीं-आठवीं शताब्दी से मिलता है। इससे पूर्व साहित्य शब्द के लिए 'काव्य' शब्द का प्रयोग होता था। आज 'काव्य' शब्द केवल पद्य रचनाओं के लिए ही प्रयुक्त होने लगा है।

काव्य के सृजन में भाव तत्त्व, कल्पना तत्त्व, बुद्धि तत्त्व और शैली तत्त्व का योगदान महत्त्वपूर्ण है। संस्कृत के आचार्यों से लेकर आज तक के आचार्यों ने अपने-अपने विचारों के अनुसार काव्य के विभिन्न रूपों का उल्लेख किया है। काव्य निर्माण के पीछे कवि का कोई न कोई उद्देश्य निहित रहता ही है। बिना उद्देश्य के किसी रचना का का सृजन होता ही नहीं है। केवल समय के अनुसार उद्देश्य बदलते रहते हैं।

पाठ्यक्रम में साहित्य का स्वरूप, तत्त्व और प्रयोजनों का समावेश किया गया है। इसके अंतर्गत हमें विभिन्न विद्वानों की परिभाषाओं के द्वारा काव्य के स्वरूप को समझ लेना है। साथ ही काव्य के विभिन्न तत्त्वों की जानकारी लेते हुए विभिन्न विद्वानों के काव्य प्रयोजन संबंधी विचारों का अध्ययन करना है।

1.3 विषय – विवेचन :

अब हम काव्य के स्वरूप, काव्य के तत्त्व और काव्य के प्रयोजन का विस्तार से अध्ययन करेंगे।

1.3.1 काव्य / साहित्य का स्वरूप :

साहित्यशास्त्र के अंतर्गत काव्य और साहित्य एक ही अर्थ में प्रयुक्त किए जाते हैं। प्राचीन काल में केवल काव्य रचनाओं का ही सृजन किया जाता था। उस समय गद्य का विकास नहीं हुआ था। गद्य का विकास आधुनिक काल की देन मानी जा सकती है। इसके बाद विभिन्न विधाओं का जन्म होने लगा। अब सभी विधाओं के लिए 'साहित्य' शब्द प्रयुक्त होने लगा है। 'काव्य' शब्द केवल पद्य रचनाओं तक सीमित रह गया। आज 'साहित्य' शब्द बहुप्रचलित और व्यापक बन गया है। लेकिन कई लोग वर्तमान समय में भी 'साहित्य' शब्द की जगह 'काव्य' शब्द का इस्तेमाल करते हुए नजर आते हैं। यहाँ हम 'काव्य' शब्द का

अर्थ साहित्य की सभी विधाओं के प्रतिनिधि के रूप में ले रहे हैं। इस प्रकार जो 'साहित्य' का लक्षण है, वही 'काव्य' का लक्षण भी माना जाएगा।

मनुष्य को आनंदानुभूति प्रदान करने में काव्य का योगदान महत्त्वपूर्ण होता है। कवि कल्पनाओं और भावनाओं का आधार लेकर मानव जीवन की विभिन्न परिस्थितियों को अलग-अलग रूप में अंकित करने की कोशिश करता है। काव्य जितना व्यापक है, उतना सूक्ष्म भी है। प्राचीन काल से ही काव्याचार्य काव्य के स्वरूप एवं लक्षण को निरूपित करने का प्रयास करते रहे हैं। 'काव्य लक्षण' या काव्य स्वरूप का आशय उस परिभाषा से है, जो सब ओर से सुसंगत तथा काव्य की विशिष्टता की परिचायक हो। इस संबंध में प्रत्येक काल में आचार्यों के चिंतन तथा दृष्टिकोण में पर्याप्त अंतर रहा है। आज मनुष्य का जीवन गतिमय बन चुका है। वह भौतिक सुख-सुविधाओं के पिछे अंधी दौड लगाता हुआ नजर आने लगा है। लेकिन ऐसे समय में भी साहित्य का महत्त्व थोडा-सा भी कम नहीं हुआ है। आज भी मनुष्य आंतरिक भावनाओं के प्रकटीकरण के लिए काव्य का ही सहारा लेता हुआ नजर आने लगा है।

काव्य मनुष्य जीवन की भावनाओं और संवेदनाओं को व्यक्त करने का काम करता है। काव्य मनुष्य को हर समय उचित दिशा-निर्देशन करता रहता है। वह इन्सान में जीवन जीने की एक ललक और उमंग पैदा करता है। बुद्धि तथा हृदय का समन्वय काव्य में होता है। साहित्य का आधार सत्यम्, शिवम और सुंदरम् होता है। संसार में एकता स्थापित करने का कार्य साहित्य के माध्यम से ही होता है। वह मानव के बाह्य और आंतरिक जगत् का वर्णन करता है। काव्य के स्वरूप को स्पष्ट रूप में समझने के लिए हमें भारतीय और पाश्चात्य विद्वानों के काव्य लक्षणों को देखना बहुत ही जरूरी है।

1.3.1.1 संस्कृत आचार्यों के काव्य-लक्षण :

- **आचार्य भरतमुनि**

भरतमुनि को संस्कृत काव्यशास्त्र का आदि आचार्य माना जाता है। उनका 'नाट्शास्त्र' ग्रंथ संस्कृत काव्यशास्त्र का प्रथम ग्रंथ है। आचार्य भरतमुनि ने इस ग्रंथ में नाटक में काव्य की स्थिति का स्पष्टीकरण करते हुए लिखा है -

> **''मृदु ललित पदाढ्यं गूढं शब्दार्थहीन,**
>
> **जनपद सुख बोध्यं युक्ति मन्नृत्ययोज्यम्**
>
> **बहुकृतरसमार्ग संधिसन्धानयुक्त**
>
> **स भवति शुभ काव्य नाटक प्रेक्षकाणाम्।।''**

अर्थात, नाटक को देखने वालों के लिए शुभ काव्य वह होता है, जिसकी रचना कोमल ललित पदों में की गई हो, जिसमें शब्द और अर्थ गूढ न हो, जिसको जनसाधारण सरलता से समझ सके, जो तर्कसंगत हो, जिससे नृत्य की योजना की जा सके, जिसमें भिन्न-भिन्न प्रकार के रस स्वीकार किए गए हो और जिसमें कथानक संधियों का पूरा निर्वाह किया गया हो।

इसमें नाटक के तत्त्वों का उल्लेख है, लेकिन भरतमुनि ने लालित्य, प्रसाद, रस आदि तत्त्वों को काव्य रूप में स्वीकार किया है।

- **अग्निपुराण :**

अग्निपुराण के निर्माण के समय के विषय में विद्वानों में मतैक्य नहीं है। फिर भी इतना तो निश्चित है कि काव्य का लक्षण सर्वप्रथम अग्निपुराण में ही उपलब्ध होता है।

''संक्षेपाद्वाक्यमिष्टार्थव्यवच्छिन्ना पदावली।
काव्य स्फुरदलंकार गुणवद्दोषवर्जितम्।।''

अर्थात, अभीष्ट अर्थ को संक्षेप में प्रकट करनेवाली पदावली काव्य कहलाती है। जिसमें अलंकार प्रकट हो और जो दोषरहित और गुणयुक्त हो। इसमें काव्य को बाह्य सीमाओं में बाँधने का प्रयत्न किया गया है, पर उसका मुख्य प्रभावकारी स्वरूप स्पष्ट नहीं हो पाता है।

- **आचार्य भामह :**

इनका काल छठी शताब्दी का मध्य भाग माना जाता है। भामह ने 'काव्यालंकार' ग्रंथ में काव्य-लक्षण देते हुए लिखा है -

''शब्दार्थौ सहितौ काव्यम्''

अर्थात, शब्द और अर्थ का सहित भाव काव्य या साहित्य है। यह परिभाषा अत्यंत व्यापक है क्योंकि इसके क्षेत्र में काव्य के अतिरिक्त शास्त्र, इतिहास, वार्तालाप आदि सभी आ जाते हैं। इसमें अतिव्याप्ति दोष के साथ-साथ काव्य के बाह्य स्वरूप का ही स्पष्टीकरण है। यह परिभाषा उचित नहीं है।

- **आचार्य दण्डी :**

दण्डी का काल सातवीं शताब्दी माना जाता है। इन्होंने 'काव्यादर्श' ग्रंथ में लिखा है -

''शरीर तावदिष्टार्थव्यवच्छिन्ना पदावली''

इन्होंने इष्ट का वर्णन करने के लिए अभिप्रेत अर्थ से युक्त शब्द को काव्य का शरीर कहा है।
अग्निपुराण की परिभाषा की तरह इसमें भी इष्ट अर्थ अपेक्षित है, जो अस्पष्ट और व्याख्यासापेक्ष है। अत: यह परिभाषा भी अस्पष्ट है।

- **आचार्य रूद्रट :**

'काव्यालंकार' में रूद्रट ने काव्य की परिभाषा इस प्रकार की है -

''ननु शब्दार्थौ काव्यम्''

अर्थात, रूद्रट ने शब्द और अर्थ के संबंध को ही काव्य माना है।

प्रस्तुत परिभाषा भामह की परिभाषा की तरह अतिव्याप्ति दोष से युक्त है। अत: यह लक्षण अस्पष्ट है।

◆ **आचार्य मम्मट :**

आचार्य मम्मट ने अपने 'काव्यप्रकाश' ग्रंथ में कविता का लक्षण इस प्रकार दिया है –

''तद्दोषौ शब्दार्थौ सगुणावनलंकृति पुन: क्वापि।''

यहाँ पर काव्य दोषहीन, गुणयुक्त और कभी–कभी अलंकार से रहित शब्दार्थ काव्य है, ऐसा कहा गया है। प्रस्तुत परिभाषा में प्रयुक्त 'अदोषौ' शब्द सार्थक नहीं है, क्योंकि सर्वथा निर्दोष रचना असंभव है। 'सगुण' शब्द भी काव्य की कोई महत्त्वपूर्ण विशेषता प्रकट नहीं करता, क्योंकि गुण बडा व्यापक अर्थ देनेवाला शब्द है। अत: यह लक्षण अस्पष्ट है।

◆ **आचार्य विश्वनाथ :**

रस संप्रदाय के आचार्य विश्वनाथ ने अपने ग्रंथ 'साहित्यदर्पण' में काव्य का लक्षण इस प्रकार दिया है–

''वाक्यं रसात्मकं काव्यम्''

अर्थात, रसात्मक वाक्य ही काव्य है।

विश्वनाथ जी रसवादी आचार्य होने के कारण रस को प्रमुखता दी है, किंतु रस की सत्ता स्वीकार कर लेने के बाद अन्य सभी तत्त्व गौण हो जाते हैं।

◆ **आचार्य पंडितराज जगन्नाथ :**

आचार्य पंडितराज जगन्नाथ संस्कृत काव्यशास्त्र परंपरा के अंतिम आचार्य है। उन्होंने अपना काव्य लक्षण इस प्रकार दिया है –

''रमणीयार्थ प्रतिपादक : शब्द : काव्यम्।''

अर्थात, रमणीय अर्थ का प्रतिपादन करनेवाला शब्द 'काव्य' है।

शब्द में सदैव अर्थ की रमणीयता होना असंभव है। कुछ विद्वान शब्द की जगह वाक्य का प्रयोग करना चाहते हैं। अत: रमणीय अर्थ देनेवाला वाक्य, काव्य होना चाहिए। यह लक्षण पर्याप्त सरल और सुबोध है।

1.3.1.2 प्राचीन हिंदी आचार्यों के काव्य–लक्षण :

संस्कृत के आचार्यों की तरह प्राचीन हिंदी आचार्यों ने भी काव्य–लक्षण बतलाने का प्रयास किया है, लेकिन हिंदी के सभी प्राचीन आचार्यों पर किसी–न–किसी प्रकार संस्कृत आचार्यों का ही प्रभाव दिखाई देता है।

◆ **आचार्य केशवदास :**

केशवदास अलंकारवादी आचार्य थे। अलंकारविहीन काव्य को वे शोभारहित नारी के समान मानते थे। उन्होंने काव्य–लक्षण इस प्रकार दिया है –

''जद्यपि सुजाति सुलच्छनी; सुबरन सरस सवृत्त।

भूषण बिनु न विराजयी, कविता बनिता मित्त।।''

अर्थात, कविता और नारी बिना आभूषण (अलंकार) के सुशोभित नहीं हो पाती। चाहे उसमें कितने भी अच्छे गुण हो। केशव के विचार से रस, छंद और शब्द-सौंदर्य के साथ अलंकार का होना आवश्यक है। इनकी परिभाषा अव्याप्ति दोष से युक्त है।

- **आचार्य श्रीपति :**

आचार्य श्रीपति ने अपने 'काव्य-सरोज' में लिखा है -

''शब्द अर्थ बिन दोष गुण अलंकार रसवान।

ताको काव्य बखानिए श्रीपति परम सुजान।।''

अर्थात, दोष रहित, गुण सहित, अलंकारों से विभूषित सरल शब्दार्थ को काव्य कहते हैं।

प्रस्तु परिभाषा पर संस्कृत आचार्य मम्मट का प्रभाव स्पष्ट लक्षित होता है। इस परिभाषा में प्रस्तुत 'बिन-दोष' शब्द निषेधात्मक है।

- **आचार्य चिंतामणि :**

अपने ग्रंथ 'कवि कुलकल्पतरू' में काव्य का लक्षण इस प्रकार दिया है -

''सगुन अलंकारन सहित, दोष रहित जो होई।

शब्द अर्थ ताको कवित्त कहत बिबुध सब कोई।।''

अर्थात, सगुण, सालंकार और दोष रहित शब्दार्थ को काव्य कहते हैं। यह मम्मट की परिभाषा का ही हिंदी रूपांतर है। केवल इस परिभाषा में अलंकार अनिवार्य माने गए हैं। काव्य सर्वथा दोष रहित नहीं हो सकता। अत: यह परिभाषा असंगत है।

- **आचार्य कुलपति मिश्र :**

कुलपति मिश्र ने 'रस रहस्य' में मम्मट तथा विश्वनाथ दोनों के काव्य-लक्षण का खंडन करते हुए अपना निजी काव्य-लक्षण इस प्रकार दिया है -

''जगते अद्‌भुत सुख सदन, शब्दरू अर्थ कवित्त।

यह लच्छन्न मैंने कियो, समुझि ग्रंथ बहु चित्त।।''

अर्थात, अलौकिक आनंद देनेवाले शब्द और अर्थ को काव्य कहते हैं।

कुलपति ने विलक्षण आनंद या सुख देनेवाली रचना को काव्य कहा है। लेकिन संसार से विलक्षण आनंद कैसे समझा जाए? यह प्रश्न है। अत: यह लक्षण अस्पष्ट है।

- **महाकवि देव :**

देव ने अपने 'काव्य-रसायन' ग्रंथ में काव्य के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए लिखा है -

'सब्द जीव तिहि अरथ मन, रसमय सुजस सरीर।

चलत वहै जुग छंद गति, अलंकार गंभीर।।''

अर्थात, शब्द जीव है, अर्थ मन है, रस से युक्त यशस्वी उसका शरीर है। दोनों प्रकार छंद उसकी गति है और अलंकार उस गति की गंभीरता है।

देव की धारणा विलक्षण है, जिसमें शब्द को शरीर न मानकर रस को शरीर माना है। गति की गंभीरता भावों पर निर्भर करती है अलंकारों पर नहीं। अत: गंभीरता को अलंकार पर आश्रित करना भी युक्तिसंगत नहीं। अत: काव्य के स्वरूप को समझने में इससे कोई विशेष सहायता नहीं मिलती है।

- **आचार्य सोमनाथ :**

आचार्य सोमनाथ ने काव्य-लक्षण देते हुए लिखा है -

''सगुन पदारथ दोष विनु, पिंगल मत अविरूद्ध।

भूषण जुत कवि कर्म जो, सो कवित्त कहि बुद्ध।।''

अर्थात, काव्य वह कवि कर्म है जिसमें शब्द और अर्थ गुण सहित, दोष रहित और पिंगल (छंद) के अनुसार हो।

इन्होंने काव्य की परिभाषा में छंद का समावेश किया है। प्रस्तुत परिभाषा पर मम्मट का प्रभाव है।

1.3.1.3 आधुनिक हिंदी विद्वानों के काव्य-लक्षण :

आधुनिक हिंदी विद्वानों के काव्य-लक्षण काव्य के स्वरूप को स्पष्ट करने के लिए सहायता करते हैं। इनके काव्य-लक्षण अधिकांश रूप में संस्कृत तथा पाश्चात्य काव्य लक्षणों से प्रभावित है।

- **महावीरप्रसाद द्विवेदी :**

''मनोभाव शब्दों का रूप धारण करते है, वही कविता है, चाहे वह पद्यात्मक हो चाहे गद्यात्मक।''

इससे स्पष्ट है, समस्त मनोभावों का प्रकाशन कविता में हो जाता है, चाहे किसी भी प्रकार से प्रकट हो। अत: यह लक्षण उपयुक्त नहीं है।

- **आचार्य रामचंद्र शुक्ल :**

हिंदी के प्रसिद्ध आलोचक और निबंधकार रामचंद्र शुल ने काव्य की परिभाषा इस प्रकार दी है-

''जिस प्रकार आत्मा की मुक्तावस्था ज्ञान दशा कहलाती है, उसी प्रकार हृदय की मुक्तावस्था रस दशा कहलाती है। हृदय की इसी मुक्ति की साधना के लिए मनुष्य की वाणी जो शब्द विधान करती आई है, उसे कविता कहते हैं।''

इस परिभाषा में आचार्य शुक्ल ने 'रस तत्त्व' को सर्वोपरि महत्ता प्रदान की है। यह परिभाषा पर्याप्त प्रसिद्ध रही है।

- **जयशंकर प्रसाद :**

छायावाद के आधारस्तम्भ जयशंकर प्रसाद ने काव्य को परिभाषित करते हुए लिखा है -

''काव्य आत्मा की संकल्पनात्मक अनुभूति है जिसका संबंध विश्लेषण, विकल्प या विज्ञान से नहीं है।''

इस परिभाषा में आत्मा की संकल्पनात्मक अनुभूति में स्पष्टता नहीं है। विज्ञान से संबंध न बताते हुए भी आगे प्रसाद जी ने काव्य को अनुभूति ही माना, जबकि वास्तव में वह अभिव्यक्ति है।

- **महादेवी वर्मा :**

छायावादी कवयित्री महादेवी वर्मा ने कविता को परिभाषित करते हुए लिखा है -

''कविता कवि-विशेष की भावनाओं का चित्रण है और वह चित्रण इतना ठीक है कि उससे वैसी ही भावनाएँ किसी दूसरे के हृदय में अविर्भूत होती है।''

यह परिभाषा गीतिकाव्य तक ही सीमित रह जाती है। कवि मन में उठनेवाली भावनाएँ दूसरे के मन में भी उत्पन्न हो यह आवश्यक नहीं है। साथ ही इसमें बुद्धि तथा कल्पना तत्त्व की उपेक्षा की गई है।

- **सुमित्रानंदन पंत :**

प्रकृति के सुकुमार कवि पंत ने लिखा है -

''कविता हमारे परिपूर्ण क्षणों की वाणी है।''

प्रस्तुत परिभाषा में परिपूर्ण क्षण किस वक्त को कहे इसके स्पष्ट संकेत नहीं मिलते हैं। अत: यह परिभाषा अस्पष्ट है।

- **डॉ. श्यामसुंदर दास :**

डॉ. श्यामसुंदर दास ने कविता को परिभाषित करते हुए लिखा है-

''काव्य वह है जो हृदय में अलौकिक आनंद या चमत्कार की सृष्टि करें।''

इस परिभाषा में रस, ध्वनि और अलंकार को समाहित करने का प्रयास किया गया है।

1.3.1.4 पाश्चात्य विद्वानों के काव्य-लक्षण :

काव्य-लक्षण के संबंध में पाश्चात्य विद्वानों ने अनेक विचार प्रकट किए हैं। इन्होंने काव्य के लिए कल्पना, बुद्धि, भाव और शैली तत्त्व की आवश्यकता को स्वीकार करके काव्य या साहित्य के लक्षण निर्धारित किए हैं। वे अन्य कलाओं के सदृश्य कविता को भी अनुकृत मानते हैं। पाश्चात्य विद्वानों के काव्य-लक्षण निम्न प्रकार के हैं-

◆ **एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका** (Encyclopedia Britanika) **:**

"Poetry is articulate music"

अर्थात, कविता सुस्पष्ट संगीत है।

यह परिभाषा सर्वत्र सत्य नहीं। संगीत, कविता का एक पक्ष है, परंतु संगीत तत्त्व काव्य का अनिवार्य अंग नहीं। सभी कविताओं में तो संगीत नहीं रहता। यह परिभाषा अव्याप्ति दोष से युक्त है।

◆ **वर्डस्वर्थ :**

अंग्रेजी के प्रसिद्ध कवि वर्डस्वर्थ ने लिखा है -

"Poetry is the spontaneous overflow of Powerful feelings, it takes its origin from emotions recollected in tranquillity."

अर्थात, कविता प्रबल अनुभूतियों का सहज उद्रेक है, जिस का स्त्रोत शांति के समय में स्मृत मनोवेगों से फूटता है।

वर्डस्वर्थ की परिभाषा तथ्यपूर्ण है; क्योंकि यह भावानुभूति और अभिव्यक्ति की प्रक्रिया को स्पष्ट करती है। इस लक्षण में भी आपत्ति उठाई जा सकती है। शांति के समय में भी अपने मनोवेगों को स्मरण करते हैं और अपने प्रबल भावों को प्रकट भी करते हैं; क्या वह सब काव्य हो जाता है? यहाँ पर अभिव्यक्ति कला और उसके प्रभाव का उल्लेख नहीं है। हम अपने सुख-दु:खपूर्ण क्षणों का स्मरण कर हँसते हैं और रोते हैं, पर सभी का वह उल्लास और विलाप सदैव कविता नहीं बन जाता। कविता के लिए उस सहज अभिव्यक्ति में सौंदर्य, संयम और प्रभाव की आवश्यकता है; परंतु इसमें संदेह नहीं कि प्रतिभा और अभिव्यक्ति-कौशल से युक्त कवियों की काव्याभिव्यक्ति की प्रक्रिया यहाँ पर अवश्य स्पष्ट हुई है।

◆ **कॉलरिज :**

"Poetry is the best words in their best order."

अर्थात, सर्वोत्तम शब्द अपने सर्वोत्तम क्रम में कविता है।

इस परिभाषा में कुछ बातें अस्पष्ट प्रतीत होती है। सर्वोत्तम शब्द कौनसे हैं और उनका सर्वोत्तम क्रम कौनसा है? स्वर्ग, सोना, पुष्प, सौंदर्य, अमृत आदि शब्द उत्तम होने चाहिए। ऐसी दशा में मृत्यु, कीचड, नरक आदि शब्द बुरे होंगे और काव्य के क्षेत्र से उन्हें निकाल देना पडेगा। पर इन शब्दों और उनके पर्यायों का उत्तम काव्य में खूब व्यवहार होता है। दूसरी बात शब्दों के क्रम की, शब्दों का कभी एक क्रम और कभी दूसरा क्रम काव्य की पंक्तियाँ बन जाता है। इसलिए यह लक्षण अस्पष्ट और भ्रामक है।

◆ **शैली** (Shelley) **:**

काव्य के लक्षण पर विचार करते हुए इन्होंने लिखा है -

"Poetry is the record of the best and happiest moments of the happiest and best minds." अर्थात, सर्वसुखी और सर्वोत्तम मनों के सर्वोत्तम और सर्वाधिक सुखपूर्ण क्षणों का लेखा कविता है।

यहाँ पर यह प्रश्न पडता है कि सबसे सुखी और सबसे उत्तम मनों को परखने की कसौटी क्या है? दूसरे उनके सर्वोत्तम और सबसे सुखी क्षण कौनसे हैं? उनका लेखा सदैव कविता होगी, यह संदिग्ध है। सुखपूर्ण क्षणों से अधिक काव्य के बीज तो विषादपूर्ण क्षणों में उगते हैं, जैसे कि स्वयं शैली का ही विचार है कि हमारे सबसे मधुर गान वे हैं जिनमें विषादपूर्ण भाव व्यक्त किए जाते हैं। अत: यह परिभाषा भावुकतापूर्ण ही है। काव्य को लेखा कहना उचित नहीं, क्योंकि इससे कल्पना और भावना की पूर्ण अभिव्यक्ति होती है, तटस्थ लेखा नहीं।

- **डॉ. जॉनसन** (Dr. Johnson) **:**

डॉ. जॉनसन कविता को कला के रूप में स्वीकार करते हुए लिखते हैं –

"Poetry is the art of uniting pleasure with thruth by calling imagination to the help of reason."

अर्थात, कविता वह कला है जो कल्पना की सहायता से युक्ति के द्‌वारा सत्य को आनंद से समन्वित करती है।

इस परिभाषा में डॉ. जॉनसन ने काव्य का प्रधान स्वरूप स्पष्ट किया है। सत्य के प्रकाशन में आनंद का समावेश, रमणीयता और रोचकता के गुण का संकेत करता है और कल्पना का तो इस प्रकार के कार्य में प्रमुख हाथ रहता ही है। युक्तिसंगत होना, सत्य के स्वरूप का आधार है। वास्तविकता का आभास और विश्वसनीयता, कविता के प्रभावशाली होने के लिए अत्यंत आवश्यक है। ऐसी दशा में डॉ. जॉनसन की धारणा अत्यंत महत्त्वपूर्ण है; परंतु इसमें कविता के कलात्मक पक्ष पर अधिक जोर है।

- **मैथ्यू आरनॉल्ड** (Mathew Arnold) **:**

मैथ्यू आरनॉल्ड कविता को परिभाषित करते हुए लिखते हैं–

"Poetry is at bottom, a criticism of life."

अर्थात, कविता अपने मूल रूप में जीवन की आलोचना है।

इस परिभाषा में उत्तम काव्य की विशेषता स्पष्ट हुई है। परंतु यह कोई विशिष्ट लक्षण नहीं माना जा सकता। जीवन की समीक्षा साहित्य के अन्य रूपों में भी हो सकती है, केवल कविता में ही नहीं। अत: यह आरनॉल्ड के निजी काव्यादर्श का संकेत करनेवाली उक्ति है, कविता की परिभाषा नहीं।

- **चैम्बर्स कोश** (Chambers Dictionary) **:**

"Poetry is the art of expressing in melodious words thoughts which are the creations of imagination and feelings."

अर्थात, कल्पना और अनुभूति से उत्पन्न विचारों को मधुर शब्दों में अभिव्यक्त करने की कला कविता है।

इस परिभाषा में काव्य के समस्त तत्त्वों का उल्लेख हुआ है। काव्य के भीतर अभिव्यंजना कौशल रहता ही है। साथ ही कल्पना और अनुभूति तथा विचार तत्त्व भी काव्य में आवश्यक है। इस परिभाषा में केवल

एक दोष है अव्याप्ति का। काव्य के लिए आवश्यक नहीं कि वह सदैव संगीतमय मधुर शब्दों के रूप में ही हो। काव्य में वीरता, क्रोध, भय आदि भाव भी प्रकट होते हैं।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि पाश्चात्य विद्वानों का एक वर्ग काव्य को जीवन से अलग मानता है, तो दूसरा वर्ग कविता को जीवन की ही अभिव्यक्ति मानता है। इन विद्वानों द्वारा काव्य परिभाषाओं में काव्य के तत्त्वों की ही चर्चा मिलती है। वास्तव में श्रेष्ठ काव्य वही है, जिसमें काव्य के सभी तत्त्वों का सुंदर सामंजस्य निहित होगा।

1.3.1.5 निष्कर्ष :

इस तरह काव्य को परिभाषित करने के प्रयास अनवरत और अविच्छिन्न गति से चलते आ रहे हैं। भारतीय और पाश्चात्य विद्वानों ने अपने-अपने तरीके से काव्य-लक्षण प्रस्तुत करते हुए काव्य के स्वरूप को बेहतर रूप में पेश करने की कोशिश की है। साथ ही काव्य में उपयुक्त तत्त्वों की चर्चा करते हुए काव्य को सुंदर बनाने के संकेत भी दिए हैं। इन सभी विद्वानों में एक नए विचार तथा धारणा को प्रस्तुत करने की प्रबल इच्छा दिखाई देती है। अंत में हम कह सकते हैं कि मनुष्य जीवन के अंतरंग और बहिरंग को अभिव्यक्त करनेवाला माध्यम ही कविता है।

1.3.2 काव्य / साहित्य – तत्त्व :

साहित्य को व्यवस्थित रूप से समझने के लिए उनके तत्त्वों की जानकारी लेना अत्यंत आवश्यक है। भारतीय तथा पाश्चात्य विद्वानों ने काव्य के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए उनके तत्त्वों का उल्लेख भी किया है। जिसमें उन्होंने भाव तत्त्व, कल्पना तत्त्व, बुद्धि तत्त्व और शैली तत्त्व पर जोर दिया है। काव्य के सृजन में तथा उसके अस्तित्व से जुडे जो तत्त्व होते है; उन्हें ही काव्य के तत्त्व कहा जाता है। पाश्चात्य विद्वान विचेंस्टर ने पाश्चात्य साहित्यशास्त्र में काव्य के मूल विधायक तत्त्वों का सर्वप्रथम उल्लेख किया था।

1.3.2.1 भाव तत्त्व (The Element of Emotion) :

साहित्य में सबसे प्रमुख तत्त्व के रूप में भाव तत्त्व को जाना जाता है। भाव तत्त्व साहित्य में सबसे अधिक प्रभाव उत्पन्न करनेवाला साहित्य का प्राण तत्त्व है। भाव ही कवि की कल्पना शक्ति को जागृत करते हैं। भाव के कारण ही कविता योग्य आकार ग्रहण करती है। भाव कविता को शक्ति प्रदान करने का काम करते हैं। भाव तत्त्व के अभाव से काव्य निष्प्राण एवं नीरस होता है। शब्द, अर्थ और कल्पना भाव को साकार रूप देते हैं। कवि अपने हृदयगत भावों को कविता में अभिव्यक्त करता है। उसमें उत्पन्न होनेवाले तीव्र भावों से ही काव्य का जन्म होता है। सुप्रसिद्ध अंग्रेजी कवि वर्डस्वर्थ ने भावों का योगदान स्पष्ट करते हुए लिखा है – ''काव्य प्रबल संवेदना का सहज उद्रेक है।'' भावों की सृष्टि कवि करता है, इसलिए कवि काव्य जगत् का विधाता है।

आचार्य विश्वनाथ जी ने काव्य में रस के महत्त्व को अंकित करते हुए लिखा है – ''वाक्यं रसात्मकं काव्यम्।'' इस काव्य-लक्षण में विश्वनाथ जी ने रस का संबंध भावों से जोड दिया है। स्पष्ट है कि भावों के बिना रस नहीं और रस के बिना काव्य नहीं। चित्त की स्थायी और अस्थायी वृत्तियों का नाम भाव है।

महावीर प्रसाद द्विवेदी जी भी इस संबंध में लिखते हैं कि, ''अंत:करण की वृत्तिड्ढों के चित्र का नाड्ढ कविता है।'' ड्ढहाँ पर उन्होंने अंत:करण की वृत्तियों का संबंध भावात्मकता से जोड दिया है। भावों की गहराई ही कविता को उच्च स्तर पर ले जाती है। कविता के मूल में संवेदना है, राग तत्त्व है। सुमित्रानंदन पंत जी कविता का जन्म वियोग तथा दु:ख से मानते हैं। इस संदर्भ में वे लिखते हैं -

''वियोगी होगा पहला कवि

आह से उपजा होगा गान,

निकल कर आँखों से चुपचाप

बही होगी कविता अनजान।''

इन पंक्तियों में मनुष्य के हृदय में स्थित दु:खगत भावों से ही कविता का जन्म माना है। हृदय की पुकार ही कविता है। मन में उठने गिरनेवाली असंख्य धाराएँ ही कविता का सागर बन जाती है। काव्य में सरसता, स्पष्टता और व्यापकता भावों के कारण ही आती है।

भाव तत्त्व से ही काव्य में प्रभावात्मकता और संप्रेषणीयता आ जाती है। लेकिन काव्य को पूर्ण रूप से प्रभावी बनाने के लिए भावों में विविधता का होना अत्यंत आवश्यक है। भरतमुनि ने अपने 'नाट्यशास्त्र' ग्रंथ में भावों को स्थायी भाव और संचारी भाव में विभाजित किया है। भाव तत्त्व साहित्य का अनिवार्य तत्त्व होते हुए भी उसकी स्थिति प्रत्येक विधा में अलग प्रकार से प्रकट होगी। प्रगीत में भाव तत्त्व प्रखर रूप में अभिव्यक्त होता है। उतना अन्य विधा में नहीं हो पाता है।

1.3.2.2 कल्पना तत्त्व (The Element of Imagination) :

कल्पना शब्द की व्युत्पत्ति 'कलृप' धातु से हुई है। कल्पना अंग्रेजी शब्द Imagination का पर्यायवाची है। जिसका शाब्दिक अर्थ सृष्टि करना, सृजन करना है।। 'Imagination' का निर्माण Image शब्द से हुआ है, जिसका अर्थ है - मानसिक बिंब या चित्र। साहित्य में भावनाओं का चित्रण कल्पना के द्वारा ही संपन्न हो जाता है। सुंदरम की प्रतिष्ठा का श्रेय कल्पना तत्त्व को ही है। जीवन के विविध अंगों का प्रस्तुतीकरण कल्पना के द्वारा ही संभव हो पाता है। इसी कल्पना के सहारे कवि दूसरों के सुख-दु:ख और अनुभूतियों का चित्रण इस प्रकार करता है कि वह हमारा सुख-दु:ख बन जाता है। कवि काव्य कौशल्य के सहारे अप्रत्यक्ष घटना को प्रत्यक्ष रूप में और सूक्ष्म भाव को स्थूल रूप में अंकित करने की कोशिश करता हैं। यह कौशल्य उसे कल्पना शक्ति से ही प्राप्त हो जाता है। काव्य में सौंदर्य की सृष्टि और चमत्कारिता उत्पन्न करने का काम कल्पना के द्वारा ही संभव हैं। लौकिक वर्णन को अलौकिक रूप में प्रस्तुत करने का कार्य कवि कल्पना के सहारे ही कर पाता है।

पाश्चात्य काव्यशास्त्र के अंतर्गत कविता में कल्पना तत्त्व को महत्त्वपूर्ण स्थान दिया है। एडिसन, काण्ट, कॉलरिज, क्रोंचे आदि प्रख्यात विचारकों ने कल्पना का प्रभूत विवेचन किया है। इन विद्वानों के अनुसार कल्पना मस्तिष्क की सौंदर्य बोधात्मक प्रवृत्ति की प्रक्रिया है। पाश्चात्य विद्वान रस्किन ने लिखा है, ''कविता कल्पना के द्वारा मनोवेगों के लिए रमणीय क्षेत्र प्रस्तुत करती है।'' कल्पना तत्त्व अमूर्त भाव को

मूर्त रूप प्रदान करता है। हिंदी के आधुनिक विद्वानों ने भी कल्पना संबंधी अपने मौलिक विचार प्रकट किए हैं। डॉ. रामदहिन मिश्र जी कल्पना के संबंध में लिखते हैं – ''अनुपस्थित वस्तु की मानस प्रतिभा खडी करने की शक्ति का नाम कल्पना है।'' शून्य या अज्ञात वस्तु को कवि कल्पना के सहारे आकार देता है। बाबू श्यामसुंदर दास जी के अनुसार, ''विज्ञान में जो बुद्धि है, दर्शन में जो सृष्टि है, वही कविता में कल्पना है।''

आचार्य रामचंद्र शुक्लजी ने कल्पना के दो भेद किए हैं – विधायक कल्पना और ग्राहक कल्पना। विधान के लिए कवि में विधायक कल्पना अपेक्षित होती है तथा संपर्क ग्रहण के लिए पाठक या श्रोता में ग्राहक कल्पना। अचेतन को सचेतन करने की बडी शक्ति कवि में कल्पना से आती है। कवि कल्पना के द्वारा नए संसार की रचना करता है। वह एक साधारण घटना को कल्पना के बल पर असाधारण रूप में पेश करता है। नवीनता तथा रोचकता जैसे गुण काव्य में कल्पना के द्वारा ही समाविष्ट होते हैं। कल्पना तत्त्व का महत्त्वपूर्ण काम मानव जीवन के अनेक दृश्यों को सम्मुख प्रस्तुत करना होता है। विचारों को उत्तेजित करने की शक्ति कल्पना में होती है। असल में कल्पना का सामर्थ्य ही कवि की प्रतिभा है।

1.3.2.3 बुद्धि तत्त्व (The Element of Intellect) :

बुद्धि तत्त्व में विचार की प्रधानता होने के कारण इसे विचार तत्त्व के नाम से भी जाना जाता है। बुद्धि का संबंध तथ्यों, विचारों और सिद्धांतों से हैं। कवि किसी विशिष्ट प्रयोजन हेतु काव्य का निर्माण करता है। वह अपने पाठकों को एक विशिष्ट विचार प्रदान करना चाहता है। यही विचार काव्य में बुद्धि तत्त्व कहलाते हैं। बुद्धि तत्त्व का संबंध अनुभूति और अभिव्यक्ति दोनों से हैं। काव्य में विचारों और तत्त्वों का प्रतिपादन बुद्धि तत्त्व के द्वारा ही होता है। बुद्धि तत्त्व के कारण काव्य सुसंगत तथा प्रभावशाली बन जाता है। कल्पना और भाव को सत्य बनाने का काम बुद्धि तत्त्व का होता है। साथ ही कल्पना, भाव और शब्दों का संयोजन औचित्यपूर्ण होने के लिए बुद्धि तत्त्व का सहारा लेना पडता है। साहित्य की प्रत्येक विधा में कथा संयोजन, चरित्र-चित्रण और भाव निरूपण का कार्य साहित्यकार बुद्धि के आधार पर ही करता है। बुद्धि तत्त्व से हीन कोई भी वर्णन हास्यास्पद हो जाता है। संत तुलसीदास के शब्द प्रयोगों के औचित्य और विचारपूर्णता पर न जाने कितनी व्याख्याएँ हुई हैं और बराबर हो रही हैं।

बुद्धि तत्त्व साहित्यकार को एक निश्चित दिशा प्रदान करता है। घटनाओं का संग्रह और घटनाओं का चुनाव इस प्रकार करना कि इसका उपयुक्त प्रभाव पडे और कर्म के अनुरूप फल दिखाने के लिए बुद्धि तत्त्व का प्रयोग होता है। भारतीय तथा पाश्चात्य विद्वानों ने बुद्धि तत्त्व को महत्त्वपूर्ण तत्त्व के रूप में स्वीकारा है। काव्य में भावों पर अंकुश लगाने का काम बुद्धि तत्त्व के द्वारा ही होता है। निबंध विधा में बुद्धि तत्त्व की प्रधानता होती है। काव्य में योग्य-अयोग्य का चयन बुद्धि ही करती है।

साहित्य का उद्देश्य केवल कोरा मनोरंजन करना नहीं है, तो एक वैचारिक शक्ति प्रदान करना भी है। उसके लिए साहित्य में बुद्धि तत्त्व की प्रधानता रहती है। काव्य में संतुलन की बागडोर बुद्धि तत्त्व पर ही निर्भर रहती है। लेकिन काव्य में विचारों की अधिकता काव्य को बोझिल बना सकती है। इसी कारण भाव और विचारों का तादाम्य काव्य के लिए अनिवार्य होता है।

1.3.2.4 शैली तत्त्व :

शैली तत्त्व काव्य के कलापक्ष से संबंधित तत्त्व है। इसे काव्य का शरीर भी कहा जाता है। प्रत्येक कवि की अपनी एक विशिष्ट शैली होती है। जिसके आधार पर कवि अपने काव्य को पूर्ण रूप दे पाता है। साहित्यकार जिस भाषा, जिस प्रणाली और रूप का इस्तेमाल कर अपनी अनुभूति को अभिव्यक्त करता है, उसे शैली कहा जाता है। इसके अंतर्गत शब्द चयन, अलंकारों का प्रयोग तथा साहित्य के स्वरूप का समावेश होता है। शैली का संबंध काव्य के बाह्यांगों से संबंधित होता है। लेकिन भावों और विचारों की संप्रेषणीय और प्रभावशाली अभिव्यक्ति शैली से ही संभव होती है। इस तत्त्व का प्रमुख आधार भाषिक संरचना है। जिस प्रकार शरीर के बिना आत्मा का कोई अस्तित्व नहीं है, उसी प्रकार भाषा आदि के बिना काव्य की कल्पना भी असंभव है।

काव्य को मधुर, उत्साहवर्धक और आकर्षक बनाने के लिए शैली का स्थान महत्त्वपूर्ण होता है। भारतीय काव्यशास्त्र में शैली के लिए 'रीति' शब्द प्रचलित है। 'रीति' का अर्थ काव्य लेखन की विशिष्ट पद्धति से जोडा जाता है। आचार्य वामन विशिष्ट पद रचना को रीति कहते हैं। पाश्चात्य विद्वानों ने शैली का संबंध कवि के व्यक्तित्व से माना है। वर्तमान समय में साहित्य में वर्णनात्मक शैली, हास्यव्यंग्यात्मक शैली, आत्मकथात्मक शैली, सरस शैली, ललित शैली, उदात्त शैली आदि का प्रयोग किया जाता है।

1.3.2.5 निष्कर्ष :

संक्षेप में क़हा जा सकता है कि, उत सब तत्त्व एक दूसरे से जुडे हुए हैं। किसी एक तत्त्व के आधारपर काव्य निर्माण असंभव-सा प्रतीत होता है। भाव, कल्पना, बुद्धि और शैली तत्त्व के संगठित और समन्वित रूप से ही साहित्य का सृजन हो सकता है। किसी भी एक तत्त्व की उपेक्षा पूरे काव्य के स्वरूप को हानि पहुँचा सकती है।

1.3.3 भारतीय काव्य प्रयोजन :

मनुष्य के प्रत्येक कार्य के पीछे कोई-न-कोई उद्देश्य अवश्य रहता है। संसार में बिना उद्देश्य के मंदबुद्धि वाला व्यक्ति भी किसी कार्य में प्रवृत्त नहीं होता है। उसी तरह कवि भी बिना उद्देश्य के रचना को जन्म नहीं देता है। काव्य-प्रणयन में कवि के जो उद्देश्य रहते हैं, वे ही काव्य प्रयोजन कहलाते हैं। काव्य को 'ब्रह्मानंद सहोदर' कहा गया है। अत: इसके निर्माण के मूल में प्रयोजनों का होना अत्यंत स्वाभाविक है। भारतीय और पाश्चात्य विद्वानों ने काव्य के प्रयोजनों पर गंभीरता से विचार किया है। यहाँ महत्त्वपूर्ण प्रयोजनों का परिचय प्रस्तुत किया जा रहा है -

1.3.3.1 संस्कृत आचार्य : काव्य प्रयोजन -

- **आचार्य भरतमुनि :**

संस्कृत काव्यशास्त्र के प्रथम आचार्य भरतमुनि के काल तक काव्य और नाटक में कोई भेद नहीं माना जाता था। भरतमुनि ने अपने 'नाट्यशास्त्र' ग्रंथ में नाट्य प्रयोजनों का उल्लेख करते हुए काव्य प्रयोजन की ओर इस प्रकार संकेत किया है -

''धर्म्यं यशस्यमायुष्यहितं बुद्धिविवर्द्धनम्।

लोकोपदेशजननं नाट्यमेतद भविष्यति।।''

अर्थात, भरतमुनि के अनुसार धर्म, यश, आयु, हितोपदेश, जनहित आदि नाट्य के प्रयोजन हैं।

- **आचार्य भामह :**

भामह ने अपने 'काव्यालंकार' ग्रंथ में काव्य के निम्नलिखित प्रयोजन बताए हैं –

''धर्मार्थकाममोक्षेषु वैचक्षण्यं कलासु च।

करोति कीर्ति प्रीतिं च साधुकाव्य निबन्धनम्।।''

अर्थात, धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष की प्राप्ति, कलाओं में निपुणता, कीर्ति और प्रीति काव्य के प्रयोजन हैं। भामह ने पहली बार चतुर्वर्ग फल-प्राप्ति को काव्य प्रयोजनों में स्थान प्रदान किया, जिसे आगे चलकर प्राय: सभी आचार्यों ने स्वीकार किया है।

- **आचार्य वामन :**

वामन के काव्य के दो प्रयोजन बताए हैं –

''काव्यं सद्दृष्टादृष्टार्थ प्रीतिकीर्ति हेतुत्त्वात''

अर्थात, काव्य के दो प्रयोजन है, एक है प्रीति या आनंद साधना जो दृष्ट प्रयोजन है और दूसरा है कीर्ति जो अदृष्ट प्रयोजन है।

- **आचार्य मम्मट :**

आचार्य मम्मट का संस्कृत काव्यशास्त्र में विशेष स्थान है। इनके बताए हुए काव्य प्रयोजनों पर पूर्ववर्ती आचार्यों का प्रभाव दिखाई देता है। साथ ही साथ अपनी मौलिकता का परिचय भी दिया है। आचार्य मम्मट ने अपने 'काव्यप्रकाश' ग्रंथ में निम्न छ: प्रयोजनों की विशद चर्चा की है –

''काव्य यशसे अर्थकृत व्यवहारविदे शिवेनरक्षयते।

सद्यः परिनिर्वृत्तये कांतासम्मिततयोपदेशयुजे।।''

अर्थात, काव्य यश प्राप्ति, अर्थ प्राप्ति, व्यवहार ज्ञान, अमंगल का नाश, अलौकिक आनंदानुभूति और कांतासम्मित उपदेश के लिए होता है। मम्मट की काव्य प्रयोजन विषयक धारणा सर्वोत्तम और परिपूर्ण मानी जाती है। इनके काव्य प्रयोजनों का संक्षेप में विवेचन इस प्रकार है –

अ) यश-प्राप्ति :

यश की कामना मनुष्य की एक सहज प्रवृत्ति है। प्रत्येक व्यक्ति यश प्राप्ति के लिए लालायित रहता है। बहुत सारे साहित्यकार भी यश-प्राप्ति की आकांक्षा से साहित्य सृजन में प्रवृत्त होते हैं। अंग्रेजी कवि मिल्टन के अनुसार यश मानव की अंतिम और उदात्ततम कामना है। विश्वविख्यात महाकवि कालिदास, भवभूति, शेक्सपियर आदि ने यश की कामना से ही काव्य रचना की है। रूद्रट ने लिखा है – ''महाकवि सरस काव्य

की रचना करता हुआ, अपने तथा नायक के प्रत्यक्ष युगांत तक रहनेवाले जगद्‌व्यापी यश का विचार करता है।''

स्वपक्ष और पर पक्ष यह यश प्रयोजन के दो पक्ष हैं। भास और भवभूति जैसे कवियों ने काव्य रचना करके अपने यश का विस्तार किया है, तो रीतिकालीन कवियों ने अपने काव्य के माध्यम से आश्रयदाताओं का गुणगान किया है।

ब) अर्थ-प्राप्ति :

सांसारिक जीवन में अर्थ (धन) को सर्वाधिक महत्त्व दिया गया है। इसी वजह से प्रत्येक मनुष्य अर्थोपार्जन के लिए कुछ न कुछ उद्योग करता है। काव्य रचना का एक प्रयोजन अर्थ-प्राप्ति भी रहा है। लगभग सभी संस्कृत तथा हिंदी आचार्यों ने इस प्रयोजन का समर्थन किया है। संस्कृत के कवि धावक ने महाराज श्री हर्ष से एक-एक श्लोक पर लक्ष मुद्रा प्राप्त की थी। रीतिकाल के कवि अपनी रचनाओं में आश्रयदाताओं की प्रशंसा करते और उससे धन प्राप्त करते थे। रीतिकाल में अर्थ-प्राप्ति करना काव्य का मुख्य प्रयोजन था। आज भी अनेक साहित्यकार अपनी रचनाओं के माध्यम से राजनेताओं की प्रशंसा करते हुए दिखाई देते हैं। इसके पीछे इनका उद्‌देश्य केवल धन कमाना ही है।

हिंदी के रीतिकालीन कवि बिहारी के बारे में यह प्रसिद्‌ध है कि उन्हें राजा जयसिंह ने एक-एक दोहे के लिए एक-एक अशर्फी दी थी। कहा जाता है कि अंग्रेजी उपन्यासकार स्कॉट ने भी ऋण चुकाने के लिए उपन्यायस लिखे थे।

क) व्यवहार ज्ञान :

मम्मट ने व्यवहार ज्ञान की शिक्षा को भी काव्य का एक प्रयोजन माना है। काव्य के द्‌वारा लौकिक व्यवहार की शिक्षा भी दी जाती है। काव्य सृजन से कवि और पाठक दोनों को भी व्यवहार ज्ञान प्राप्त होता है। संस्कृत साहित्य में बहुत सारे ग्रंथ इस उद्‌देश्य को ध्यान में रखकर ही लिखे गए हैं। आचार्य कुंतक ने इस प्रयोजनसंबंधी लिखा है - ''सत्काव्य में औचित्य से युक्त व्यवहार चेष्टा का निदर्शन प्रधान रहता है।'' महाभारत, पंचतंत्र, हितोपदेश आदि काव्यों से व्यवहार ज्ञान की प्राप्ति होती है। यह प्रयोजन जीवन की वास्तविकताओं को जानने - समझने के लिए एक दृष्टि प्रदान करता है। साथ ही उचितानुचित व्यवहार का ज्ञान भी इस प्रयोजन से प्राप्त होता है।

ड) शिवेतरक्षयते :

शिवेतरक्षयते का अर्थ है अमंगल का नाश। इस प्रयोजन को संस्कृत और हिंदी आचार्यों ने मान्यता दी है। साहित्य केवल मनोरंजन तक सीमित कभी नहीं रहा; बल्कि उसका लक्ष्य लोकहित ही रहा है। अनिष्ट के निवारण हेतु बहुत सारा साहित्य लिखा गया है। भक्तिकाल के सुप्रसिद्‌ध कवि तुलसीदास ने स्वङ्गं की बाहु पीडा से मुक्ति पाने के लिए 'हनुमान बाहुक' ग्रंथ की रचना की थी। मयूर कवि ने सूर्य से कोढ निवारण की प्रार्थना करते हुए 'सूर्यशतक' की रचना की थी।

भक्तिकाल के कबीर, रैदास जैसे कवियों ने जाति-पाँति की अमंगल प्रथा का विरोध किया। रीतिकाल में भूषण ने लोकहित को ध्यान में रखते हुए मुगल शासन की दमणकारी नीति के खिलाफ रचनाएँ लिखी। आधुनिक काल के कवियों ने अंग्रेजी शासन के अन्याय से मुक्ति पाने के लिए अनेक रचनाओं का सृजन किया। साथ ही इन कवियों ने भारत में चलती आ रही अनेक अनिष्ठ प्रथाओं का विरोध करने के प्रयोजन से रचनाएँ लिखी।

इ) सद्य: परिनिर्वृत्तये :

सद्य: परिनिर्वृत्तये का अर्थ है आनंद की प्राप्ति। इस आनंद का संबंध अलौकिक आनंद से हैं। सभी संस्कृत आचार्यों ने इसे सर्वोत्कृष्ट तथा प्रमुख प्रयोजन के रूप में स्वीकारा है। काव्य के आस्वादन से जो रस रूपी आनंद मिलता है, उससे कवि और पाठक दोनों को आनंदानुभूति होती है। इस आनंद को 'ब्रह्मानंद सहोदर' भी कहा गया है। इससे मनुष्य के जीवन में वेदना तथा विषमता का नाश होकर शांति का मनोराज्य स्थापित हो जाता हैं। कष्टों से मुक्ति पाकर अलौकिक आनंद की प्राप्ति होती है।

ई) कांतासम्मित उपदेश :

शास्त्रों के अंतर्गत उपदेश-शैली तीन प्रकार की बताई गई है - प्रभु सम्मित, सुहृदय सम्मित और कांता सम्मित। काव्य में कांता सम्मित उपदेश को महत्त्व दिया गया है। कांता सम्मित अर्थात् प्रिया द्वारा मधुर शैली में कही गई बात या भेजा गया संदेश। जिस प्रकार पत्नी अपने मधुर वचनों से पति को मुग्ध करके अनर्थ से बचाती है, उसी प्रकार काव्य भी मधुर कथा और ध्वनि के सहारे मनुष्य को उच्च आदर्शों की शिक्षा देता है। उसका प्रभाव भी शीघ्रता से होता है। सुंदर, कोमल अओर आकर्षक भाषा काव्य को रोचक बनाती है। कवि बिहारी का निम्न दोहा इस प्रयोजन का उत्तम उदाहरण है। जिसने राजा जयसिंह को काफी प्रभावित किया था।

''नहिं पराग, नहिं मधुर मधु, नहिं विकास इहि काल।
अलि, कली ही सौं बन्ध्यौ, आगे कौन हवाल।''

1.3.3.2 प्राचीन हिंदी आचार्य : काव्य प्रयोजन -

हमारे प्राचीन हिंदी आचार्यों ने काव्य प्रयोजन संबंधी महत्त्वपूर्ण बातों का उल्लेख किया है। इनमें से कुछ आचार्यों के काव्य प्रयोजन इस प्रकार से है -

- **गोस्वामी तुलसीदास :**

महाकवि तुलसीदास ने अपने प्रसिद्ध महाकाव्य 'रामचरितमानस' में काव्य प्रयोजन संबंध में लिखा है-

''कीरति भनिनि भूति भल सोई।
सुरसरि सम सब कहँ हित होई।''

अर्थात कीर्ति, कविता और ऐश्वर्य - वैभव वही श्रेष्ठ है जो गंगा नदी के समान सब का हित करनेवाला है। भावार्थ यह है कि तुलसीदास जी ने गंगा नदी की पवित्रता तथा उपकारी भावना से जोडकर लोक मंगल की स्थापना करना ही काव्य का प्रयोजन सिद्‌ध किया है।

- **आचार्य कुलपति :**

आचार्य कुलपति ने काव्य प्रयोजन के विषय में लिखा है -

''जस सम्पत्ति आनन्द अति दुरितन डारै खोई।

होत कवित्त ते चतुराई जगत राम बस होई।।''

अर्थात, यश, संपत्ति, अलौकिक आनंद, दुःखों का नाश और व्यवयहार ज्ञान काव्य के प्रयोजन हैं। कुलपति ने अपने इस दोहे में मम्मट के काव्य प्रयोजनों को ही दोहराया है।

1.3.3.3 आधुनिक हिंदी विद्‌वान : काव्य प्रयोजन -

हिंदी साहित्य के आधुनिक कवियों, आचार्यों तथा आलोचकों ने युग की बदलती हुई काव्य विषयक मान्यताओं को ध्यान में रखकर अपने-अपने काव्य प्रयोजनों का निरूपण किया है।

- **महावीर प्रसाद द्‌विवेदी :**

इन्होंने ज्ञान का विस्तार और मनोरंजन को ही काव्य प्रयोजन स्वीकार किया है।

- **मैथिलीशरण गुप्त :**

राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त ने काव्य के दो प्रयोजन माने हैं - मनोरंजन और उपदेश।

''केवल मनोरंजन न कवि का, कर्म होना चाहिए।

उसमें उचित उपदेश का भी, मर्म होना चाहिए।''

- **डॉ. नगेंद्र :**

डॉ. नगेंद्र काव्य का प्रयोजन कवि की आत्माभिव्यक्ति की भावना को मानते हैं। उनके अनुसार, ''साहित्य का प्रयोजन आत्माभिव्यक्ति है। कवि या लेखक के हृदय में जो भाव या विचार उठते हैं, उन्हें वह प्रकाशित करना चाहता है।

1.3.3.4 निष्कर्ष :

उपर्युक्त काव्य प्रयोजनों का विस्तृत विवेचन करने से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते है कि संस्कृत-आचार्यों द्‌वारा उल्लेखित काव्य प्रयोजन विस्तृत और सूक्ष्म दिखाई देते हैं। इसमें मम्मट द्‌वारा प्रस्तुत काव्य प्रयोजन को सबसे अधिक मान्यता मिलती हुई दिखाई देती है। हिंदी विद्‌वानों के काव्य प्रयोजनों पर संस्कृत और पाश्चात्य विचारकों का प्रभाव देखने को मिलता है। पाश्चात्य विद्‌वानों ने काव्य को कला के अंतर्गत रखा है। इन विद्‌वानों में भी काव्य प्रयोजन संबंधी अनेक मत-मतांतर दिखाई देते हैं। लेकिन उनका समन्वित

रूप अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। संक्षेप में उल्लेखित सभी काव्य प्रयोजन एक दूसरे के पूरक है, विरोधी नहीं। किसी भी एक काव्य प्रयोजन से काव्य का स्वरूप स्पष्ट नहीं हो पाएगा।

1.4 स्वयं-अध्ययन के लिए प्रश्न :

अ) निम्नलिखित वाक्यों में दि गए पर्यायों में से उचित पर्याय चुनकर वाक्य फिर से लिखिए।

1) संस्कृत काव्यशास्त्र का प्रथम ग्रंथ .... माना जाता हैं

(क) काव्यादर्श (ख) नाट्यशास्त्र (ग) काव्यप्रकाश (घ) काव्यशास्त्र

2) Literature शब्द .... से बना है।

(क) Lecture (ख) Poet (ग) Letter (घ) Write

3) 'शब्दार्थौ सहितौ काव्यम्'' .... का काव्य लक्षण है।

(क) भामह (ख) दण्डी (ग) भरतमुनि (घ) वामन

4) 'ननु शब्दार्थो काव्यम्' परिभाषा .... ने दी है।

(क) रूद्रट (ख) राजेशखर (ग) विश्वनाथ (घ) मम्मट

5) 'साहित्यदर्पण' के रचनाकार .... है।

(क) भामह (ख) विश्वनाथ (ग) भरतमुनि (घ) कुंतक

6) 'काव्यालंकार' के रचयिता .... है।

(क) आनंदवर्धन (ख) मम्मट (ग) भामह (घ) जगन्नाथ

7) कविता हमारे .... क्षणों की वाणी है।

(क) उत्कृष्ट (ख) परिपूर्ण (ग) सीमित (घ) सारपूर्ण

8) 'रमणीयार्थ प्रतिपादक: शब्द: काव्यम' परिभाषा .... की है।

(क) जगन्नाथ (ख) विश्वनाथ (ग) राजेशखर (घ) मम्मट

9) 'काव्यप्रकाश' के रचयिता .... है।

(क) भामह (ख) रूद्रट (ग) राजेशखर (घ) मम्मट

10) विंचेस्टर ने साहित्य के .... तत्त्व माने हैं।

(क) दो (ख) चार (ग) तीन (घ) पाँच

11) कांतासम्मित उपदेश को काव्य प्रयोजन .... ने माना है।

(क) आनंदवर्धन (ख) विश्वनाथ (ग) मम्मट (घ) वामन

12) Poetry is at bottam a criticism of life .... ने कहा है।

(क) कॉलरिज (ख) ड्राइडन (ग) शेक्सपियर (घ) मैथ्यू आरनॉल्ड

13) साहित्य का प्राण तत्त्व .... है।

(क) भाव (ख) शैली (ग) बुद्धि (घ) कल्पना

14) .... तत्त्व में विचार की प्रधानता होती है।

(क) शैली (ख) बुद्धि (ग) कल्पना (घ) भाव

15) 'काव्य रसायन' के रचयिता .... है।

(क) बिहारी (ख) भूषण (ग) देव (घ) घनानंद

16) Imagination शब्द .... से बना है।

(क) Image (ख) Photo (ग) Intellet (घ) Copy

17) शैली तत्त्व काव्य के .... पक्ष से संबंधित है।

(क) भाव (ख) कला (ग) विचार (घ) बुद्धि

18) भारततीय काव्यशास्त्र में शैली के लिए .... शब्द प्रचल्लित है।

(क) ध्वनि (ख) वक्रोक्ति (ग) रीति (घ) अलंकार

19) आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने .... को काव्य प्रयोजन माना है।

(क) आत्महित (ख) विवेक जागृति (ग) आत्माभिव्यक्ति (घ) हृदय की मुक्तावस्था

20) कविता सुस्पष्ट संगीत है .... ने कहा है।

(क) कार्लाइल (ख) ड्राइडन (ग) अरस्तू (घ) वर्डसवर्थ

आ) निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर एक-एक वाक्य में लिखिए।

1. 'वाक्य रसात्मक काव्यम' परिभाषा कौनसे आचार्य की है?
2. आचार्य भामह के ग्रंथ का नाम क्या है?
3. 'शब्दार्थों रहितौ काव्यम्' परिभाषा कौनसे आचार्य की है?
4. 'कविकुलकल्पतरू' ग्रंथ के लेखक कौन है?
5. 'काव्य सरोज' ग्रंथ के लेखक कौन है?
6. 'तद्दोषौ शब्दार्थों सगुणावनलंकृति पुन: क्वापि' यह काव्य लक्षण कौन से आचार्य का है?
7. सुमित्रानंदन पंत की काव्य परिभाषा कौनसी है?
8. Poetry is at bottom a criticism of life परिभाषा किसने दी है?
9. महावीर प्रसाद द्विवेदी की काव्य परिभाषा कौनसी है?
10. 'रत्नावली' ग्रंथ के रचयिता का नाम क्या है?
11. साहित्य के मूल तत्त्व कौनसे हैं?

12. बुद्धि तत्त्व का दूसरा नाम क्या है?

13. 'काव्यादर्श' के रचयिता कौन है?

14. कौनसे अंग्रेजी उपन्यासकार ने ऋण से मुक्ति पाने के लिए उपन्यास लिखा?

15. 'काव्य प्रकाश' के रचयिता कौन है?

16. आचार्य वामन के अनुसान काव्य प्रयोजन कितने हैं?

17. जयशंकर प्रसाद की काव्य परिभाषा कौनसी है?

18. आचार्य मम्मट ने कितने प्रयोजनों की चर्चा की है?

19. महावीर प्रसाद द्विवेदी के काव्य प्रयोजन कौनसे हैं?

1.5 पारिभाषिक शब्द, शब्दार्थ :

1. प्रवर्तक - संस्थापक
2. अशर्फी - सोने की मुहर
3. अतिव्याप्ति - किसी भी कथन के अंतर्गत लक्ष्य के अतिरिक्त अन्य वस्तु के आ जाने को न्याय में अतिव्याप्ति दोष कहते हैं।
4. भावात्मक - भावनाओं से युक्त
5. अली - भ्रमर
6. वियोग - दूर होने की अवस्था
7. आलोचना - गुण-दोषों का विवेचन
8. प्रयोजन - उद्देश्य
9. प्रचलन - प्रथा, रिवाज
10. अंत:करण - मन, अंतरात्मा

1.6 स्वयं-अध्ययन प्रश्नों के उत्तर :

अ) उचित पर्याय

1. नाट्यशास्त्र	2. Letter	3. भामह	4. रूद्रट
5. विश्वनाथ	6. भामह	7. परिपूर्ण	8. जगन्नाथ
9. मम्मट	10. चार	11. मम्मट	12. मैथ्यू आरनॉल्ड
13. भाव	14. बुद्धि	15. देव	16. Image
17. कला	18. रीति	19. हृदय की मुक्तावस्था	20. ड्राइडन

आ) एक वाक्य में उत्तर –

1. 'वाक्य रसात्मक काव्यम्' परिभाषा आचार्य विश्वनाथ की है।
2. आचार्य भामह के ग्रंथ का नाम 'काव्यालंकार' है।
3. 'शब्दार्थौ सहितौ काव्यम' परिभाषा भामह की है।
4. 'कविकुलकल्पतरू' ग्रंथ के लेखक आचार्य चिंतामणी है।
5. 'काव्य सरोज' ग्रंथ के लेखक आचार्य श्रीपति है।
6. 'तद्दोषौ शब्दार्थौ सगुणावनलंकृति पुन: क्वापि' यह काव्य लक्षण आचार्य मम्मट का है।
7. सुमित्रानंदन पंत की परिभाषा है, ''कविता हमारे परिपूर्ण क्षणों की वाणी हैं।''
8. Poetry is at bottom a criticism of life परिभाषा मैथ्यू आरनॉल्ड की है।
9. महावीर प्रसाद द्विवेदी की परिषाषा है, ''मनोभाव शब्दों का रूप धारण करते हैं, वही कविता है, चाहे वह पद्यात्मक हो चाहे गद्यात्मक।''
10. 'रत्नावली' ग्रंथ के रचयिता धावक है।
11. भाव, कल्पना, बुद्धि और शैली साहित्य के मूल तत्त्व हैं।
12. बुद्धि तत्त्व का दूसरा नाम विचार तत्त्व है।
13. 'काव्यादर्श' के रचयिता आचार्य दण्डी है।
14. अंग्रेजी उपन्यासकार स्कॉट ने ऋण से मुक्ति पाने के लिए उपन्यास लिखा था।
15. 'काव्यप्रकाश' के रचयिता आचार्य मम्मट है।
16. आचार्य वामन के अनुसार काव्य के दो प्रयोजन हैं।
17. जयशंकर प्रसाद की काव्य परिभाषा है, ''काव्य आत्मा की संकल्पनात्मक अनुभूति है जिसका संबंध विश्लेषण, विकल्प या विज्ञान से है।''
18. आचार्य मम्मट ने छ: काव्य प्रयोजनों की चर्चा की है।
19. महावीर प्रसाद द्विवेदी के ज्ञान का विस्तार और मनोरंजन यह दो प्रयोजन हैं।

1.7 सारांश :

- साहित्यशास्त्र में काव्य और साहित्य एक दूसरे के पर्यायवाची शब्द माने गए हैं। आज साहित्य की अनेक विधाएँ हमारे सामने प्रस्तुत हो रही है। काव्य शब्द आज पद्यात्मक रचनाओं के लिए ही प्रयुक्त होने लगा है।
- भारतीय और पाश्चात्य विद्वानों ने अपनी-अपनी दृष्टि से काव्य को परिभाषित करने की कोशिश की है। संस्कृत आचार्यों के काव्य लक्षण अत्यंत मौलिक है और हिंदी विद्वानों के काव्य लक्षणों पर संस्कृत और पाश्चात्य विद्वानों के विचारों का प्रभाव दिखाई देता है। काव्य को हम मनुष्य के अंतरंग और बहिरंग को अभिव्यक्त करनेवाला सशक्त माध्यम मान सकते हैं।

- भाव, कल्पना, बुद्धि और शैली ये साहित्य के प्रमुख तत्त्व है। भाव तत्त्व को काव्य का प्राण तत्त्व माना है। काव्य में सौंदर्य की प्रतिष्ठा करने में कल्पना तत्त्व कार्य करता है, तो विचारों का प्रतिपादन बुद्धि तत्त्व के माध्यम से होता है। शैली तत्त्व काव्य के कलापक्ष से संबंधित है। जिससे कोई भी रचना मधुर और रोचक बनती है।
- संस्कृत आचार्यों में मम्मट की काव्य प्रयोजन विषयक धारणा को सर्वोतम और परिपूर्ण माना गया है। इन्होंने काव्य के छ: काव्य प्रयोजनों की चर्चा की है। विशेष बात यह है कि समय और परिस्थिति के अनुरूप काव्य प्रयोजन संबंधी विचारों में बदलाव आया है।

1.8 स्वाध्याय :

1) संस्कृत आचार्यों के काव्य लक्षणों पर प्रकाश डालिए।
2) पाश्चात्य विद्वानों की काव्य परिभाषाओं पर प्रकाश डालिए।
3) काव्य के तत्त्वों को विशद कीजिए।
4) काव्य के स्वरूप को स्पष्ट कीजिए।
5) मम्मट द्वारा प्रतिपादित काव्य-प्रयोजनों का विस्तारपूर्वक विवेचन कीजिए।
6) काव्य के प्रयोजनों पर प्रकाश डालिए।

1.9 क्षेत्रीय कार्य :

- किसी साहित्यकार से मिलकर काव्य के स्वरूप पर विचार-विमर्श कीजिए।
- काव्य के तत्त्वों के बारे में जानकारी हासिल कीजिए।
- किसी रचना से पढकर उसमें प्रयोजन ढूँढिए।

1.10 अतिरिक्त अध्ययन के लिए :

1) काव्यशास्त्र - डॉ. भगीरथ मिश्र
2) भारतीय साहित्यशास्त्र - बलदेव उपाध्याय
3) शास्त्रीय समीक्षा के सिद्धांत (भाग 1 और 2) - डॉ. गोविंद त्रिगुणाराय
4) भारतीय काव्यशास्त्र की परंपरा - सं. डॉ. नगेंद्र
5) काव्यशास्त्र के विविध आयाम - सं. मधु खराटे
6) साहित्य विवेचन - सुमन मल्लिक
7) भारतीय एवं पाश्चात्य काव्यशास्त्र - डॉ. यतींद्र तिवारी
8) काव्यशास्त्र - डॉ. कन्हैयालाल अवस्थी, डॉ. अमित अवस्थी
9) भारतीय काव्यशास्त्र - डॉ. विजयपाल सिंह
10) साहित्यशास्त्र - डॉ. नारायण शर्मा
11) साहित्य रूप : शास्त्रीय विश्लेषण - डॉ. ज्ञानराज गायकवाड

❑❑❑

इकाई -2
शब्दशक्ति, काव्य-गुण और काव्य-दोष

अनुक्रम

2.1 उद्देश्य

2.2 प्रस्तावना

2.3 विषय-विवेचन

2.3.1 शब्दशक्ति

2.3.1.1 अभिधा

2.3.1.2 लक्षणा

2.3.1.3 व्यंजना

2.3.2काव्य-गुण

2.3.2.1 माधुर्य गुण

2.3.2.2 ओज गुण

2.3.2.3 प्रसाद गुण

2.3.3काव्य-दोष

2.3.3.1 पद्गत दोष (पद दोष)

2.3.3.2 अर्थगत दोष (अर्थ दोष)

2.3.3.3 रसगत दोष (रस दोष)

2.4 स्वयं-अध्ययन के लिए प्रश्न

2.5 पारिभाषिक शब्द, शब्दार्थ

2.6 स्वयं-अध्ययन प्रश्नों के उत्तर

2.7 सारांश

2.8 स्वाध्याय

2.9 क्षेत्रीय कार्य

2.10 अतिरिक्त अध्ययन के लिए

2.1 उद्देश्य :

1. काव्य एवं साहित्य से परिचित होंगे।
2. शब्दशक्ति के प्रकारों से परिचित होंगे।
3. अभिधा, लक्षणा और व्यंजना के भेद समझ सकेंगे।
4. काव्य-गुणों का महत्त्व और भेद समझ सकेंगे।
5. काव्य-दोषों का स्वरूप और भेदों से परिचित होंगे।

2.2 प्रस्तावना :

मनुष्य सामाजिक प्राणी होने के कारण वह अपने विचारों का आदान-प्रदान करने के लिए अपनी-अपनी भाषा का प्रयोग करता है। इसी परिप्रेक्ष्य में भाषा का हर शब्द किसी न किसी 'अर्थ' का वाचक होता है। विशिष्ट प्रयोजन के लिए 'शब्द' का जब विशिष्ट प्रयोग किया जाता है, तो मूल अर्थ से अलग अन्य अर्थ स्पष्ट होने लगता है। इस पाठ्यक्रम में काव्य एवं उसके प्रकारों आदि का सामान्य परिचय अपेक्षित है। साथ ही काव्य-गुण और काव्य-दोश के अंतर्गत उसके भेदों का परिचय देखेंगे।

2.3 विषय - विवेचन :

शब्दशक्ति काव्य-गुण, काव्य-दोष का स्वरूप समझने के लिए हमें काव्य का स्वरूप, उससे तात्पर्य, काव्य-गुण का स्वरूप, काव्य-दोष का स्वरूप तथा उसके भेदों से परिचित होना आवश्यक है।

शब्द और अर्थ का परस्पर संबंध रहा है। सार्थक वर्णो के समुह को 'शब्द' कहते हैं। अत: अर्थपूर्ण ध्वनिसमूह को 'शब्द' कहा जाता है। संस्कृत आचार्यों ने शब्द और अर्थ पर बल देकर ही काव्य का स्वरूप स्पष्ट किया है। शब्द और अर्थ को पानी और लहर की उपमा देते हुए तुलसीदास कहते हैं -

''गिरा अर्थ जल बीचि सम, कहियत भिन्न न भिन्न ।''

अर्थात् पानी में उठनेवाली लहर पानी से अलग दिखाई देती है। वास्तविक रूप में अलग नहीं, बल्कि वह पानी का एक अंग है। तात्पर्य शब्द का महत्त्व तथा अस्तित्व उसके अर्थ पर निर्भर करता है।

2.3.1 शब्दशक्ति

हिंदी व्याकरण में किसी वाक्य के भाव का समझने के लिए प्रयुक्त अर्थ को शब्दशक्ती कहा जाता है। इसि आधार पर उस वाक्य में प्रयुक्त शब्दों के प्रकार, शक्ति और व्यापकता के आधार पर उसे विभिन्न प्रकार अविभक्त किया जाता है।

2.3.1.1 अभिधा

अभिधा शब्दशक्ति के द्वारा शब्दों के मुख्यार्थ अथवा साक्षात् संकेतित अर्थ का बोध होता है। मुख्य या प्रथम अर्थ का बोध कराने के कारण 'अभिधा' को **'मुख्या'** या **'अग्रिमा'** भी कहते हैं। **डॉ. भगीरथ मिश्र** ने इसकी परिभाषा देते हुए लिखा है -

''अभिधा वह शब्दशक्ति या शब्द का व्यापार है, जिसमें साक्षात् संकेतित या मुख्य अर्थ का बोध होता है।''

प्रस्तुत परिभाषा में 'संकेतित' शब्द विशेष अर्थ रखता है। भाषा वैज्ञानिक मानते हैं कि शब्द और अर्थ के बीच एक स्थायी संबंध होता है, उसे 'संकेत ग्रह' कहते हैं। जैसे - 'पुस्तक' शब्द का पुस्तक वस्तु से या 'गाय' शब्द का गाय प्राणि से संकेत संबंध है। जब हम किसी शब्द का उच्चारण करते हैं, तो तत्काल उसका अर्थ श्रोता के मानस पटल पर अंकित हो जाता है। इस संबंध का कोई तर्कसंगत आधार नहीं है। यह केवल समाज की इच्छा या परंपरा है। अत: संकेत को 'यादृच्छिक' भी कहा गया है।

अत: '**संकेतित अर्थ**' से तात्पर्य उस अर्थ से है, जिसका प्रयोग हम सामान्य जीवन में दैनिक कार्यों के संचालन के लिए करते हैं। संक्षेप में लोगों में प्रचलित कोश सम्मत अर्थ ही 'संकेतित अर्थ' कहलाता है। उदा.

''कनक, कनक ते सौगुनी मादकता अधिकाय।
वा खाए बौराय जग, या पाए बौराय।''

इन पंक्तियों में 'कनक' (धतूरा), 'कनक' (सोना), 'मादकता' (नशा) सभी शब्दों का कोश-सम्मत एवं लोक-प्रचलित अर्थ (संकेतित अर्थ) ही लिया गया है। इसलिए यहाँ पर अभिधा शक्ति मानी जाएगी।

अब प्रश्न यह उठता है कि इस संकेतित अर्थ का ज्ञान हमें कैसे होता है ? उत्तर है, शब्द-बोध के साधनों से हमें शब्द के संकेतित अर्थ का बोध होता है। विद्वानों ने इन साधनों की संख्या आठ निर्धारित की है - (१) व्याकरण, (२) उपमान, (३) कोश, (४) आप्तवाक्य, (५) व्यवहार, (६) प्रसिद्ध पद का सानिध्य, (७) वाक्य शेष और (८) विवृत्ति।

संक्षेप में अभिधा शक्ति के द्वारा शब्द के जिस अर्थ का बोध होता है, उसे **वाच्यार्थ, मुख्यार्थ, संकेतार्थ या अभिधेयार्थ** कहा जाता है। यह प्रसिद्ध अर्थ होता है, जो साधारण व्यवहार, कोश, व्याकरण आदि में मिलता है। वाच्यार्थ अथवा मुख्य अर्थ का बोध कराने वाले शब्द '**वाचक शब्द**' कहलाते हैं।

अभिधा शक्ति द्वारा जिन वाचक शब्दों का बोध कराया जाता है, वे वाचक शब्द तीन प्रकार के होते हैं- (१) रूढ़ (२) यौगिक (३) योगरूढ़।

रूढ़ शब्द - रूढ़ या रूढ़ि शब्द वे हैं, जिनकी कोई व्युत्पत्ति न हो सके; जैसे, घर, तरू, चंद्र, घोडा, पशु, घड़ा, जल, पेड़, पत्ता, लड्डू, पौधा आदि।

यौगिक शब्द - यौगिक वे शब्द हैं, जिनकी व्युत्पत्ति हो सकती है अर्थात् जो प्रकृति और प्रत्यय के योग से बनते हैं। इनका अर्थ व्युत्पत्ति के अनुसार ही होता है; जैसे, 'विद्यालय' यह एक शब्द है, किंतु इसके दो अवयव हैं - विद्या + आलय। यहाँ पर 'ज्ञानार्जन का स्थान' अर्थ 'विद्या और आलय' अवयवों के अर्थों के साथ संगत बैठता है। अत: यह यौगिक शब्द है। अन्य उदाहरण - देवराज, दिवाकर, सहायक, तरूजीवी, पशुतुल्य, नरपति आदि।

योगरूढ़ शब्द – योगरूढ़ या योगरूढ़ि वे शब्द हैं, जो यौगिक होते हैं फिर भी उनका अर्थ रूढ़ होता है। अर्थात् प्रकृति और प्रत्यय का अलग-अलग अर्थ तो निकलता है, पर उससे शब्द का वास्तविक अर्थ न निकलकर एक विशिष्ट अर्थ निकलता है; जैसे, 'पंकज' (पंक + ज)। यहाँ 'पंक' का अर्थ 'कीचड़' और 'ज' का अर्थ 'उत्पन्न' होता है। किंतु कीचड़ से केवल कमल ही नहीं, अन्य वनस्पतियाँ और दुर्गंध आदि भी उत्पन्न होते हैं, पर सभी को 'पंकज' नहीं कहते, 'कमल' को ही कहते हैं। इसी प्रकार 'गिरिधर' शब्द 'गिरि' और 'धर' दो अवयवों के मिश्रण से बना यौगिक शब्द है। लेकिन इसका प्रत्येक गिरि धारण करने वाले के लिए प्रयोग न करके केवल भगवान श्रीकृष्ण के अर्थ में ही यह शब्द रूढ़ हो गया है। अत: 'पंकज' और 'गिरिधर' योगरूढ़ शब्द हैं। अन्य उदाहरण – निलकंठ, चक्रधर, पशुपति, जलज, गणनायक, गणेश आदि।

2.3.3.2 लक्षणा

आ. मम्मट ने '**काव्य-प्रकाश**' में लक्षणा की परिभाषा इन शब्दों में की है –

''मुख्यार्थबाधे तद्योगे रूढ़ितोऽथ प्रयोजनात्।
अन्योऽर्थो लक्ष्यते यत् सा लक्षणारोपिता क्रिया।।''

अर्थात् मुख्य अर्थ में बाधा होने पर, रूढ़ि अथवा विशेष प्रयोजन के कारण जिस शक्ति के द्‌वारा मुख्यार्थ से सम्बन्ध रखने वाले अन्य अर्थ की प्रतीति होती है, उस शब्दशक्ति को 'लक्षणा' कहते हैं। लगभग यही परिभाषा आ. विश्वनाथ ने भी प्रस्तुत की है। लक्षणा शब्दशक्ति के द्‌वारा जो शब्द अपना वास्तविक अर्थ प्रकट करते हैं, उन्हें '**लक्षक**' अथवा '**लाक्षणिक शब्द**' कहते हैं और लक्षणा शक्ति के द्‌वारा जो अर्थ प्रकट होता है, उसे '**लक्ष्यार्थ**' कहते हैं।

आ. मम्मट के अनुसार लक्षणा की तीन विशेषताएँ हैं – (१) मुख्यार्थ या वाच्यार्थ में बाधा, (२) मुख्यार्थ से कुछ न कुछ संबंध (३) रूढ़ि या प्रयोजन द्‌वारा अन्य अर्थ का बोध।

१) मुख्यार्थ या वाच्यार्थ में बाधा – जब शब्दों के वाच्यार्थ में वांछित अर्थ की उपलब्धि न हो, तो मुख्यार्थ में बाधा मानी जाएगी। उदा. यदि कहा जाए कि, 'घनश्याम गधा है' तो इसमें पशु रूप गधे के मुख्यार्थ में बाधा है; क्योंकि घनश्याम गधे के समान चार पैरों वाला नहीं है।

२) मुख्यार्थ से कुछ न कुछ संबंध – मुख्यार्थ में बाधा होने पर जो अन्य अर्थ लगाया जाता है, उसका मुख्यार्थ से थोडा-बहुत संबंध अवश्य होता है। जैसे उपर्युक्त उदाहरण में घनश्याम यद्यपि गधे के समान चार पैरों वाला नहीं है, लेकिन एक बात में संबंध अवश्य है कि उसकी मूर्खता गधे से समानता रखती है।

३) रूढ़ि या प्रयोजन द्‌वारा अन्य अर्थ का बोध – लाक्षणिक प्रयोग या तो रूढ़ होता है या ऐसे प्रयोग करने का कोई न कोई प्रयोजन होता है। उक्त वाक्य 'घनश्याम गधा है' में रूढ़ि लक्षणा है। क्योंकि किसी को मूर्ख बताने के लिए उसे 'गधा' कहना रूढ़ हो गया है।

लक्षणा के भेद –

रूढ़ि और प्रयोजन के आधार पर लक्षणा के दो भेद होते हैं – (१) रूढ़ि लक्षणा (२) प्रयोजनवती लक्षणा।

१) रूढ़ि लक्षणा – रूढ़ि लक्षणा में शब्द के नियत और संकेतित अर्थ से भिन्न किसी दूसरे अर्थ का बोध होता है तथा अर्थ की यह भिन्नता किसी रूढ़ि अथवा परंपरा के कारण होती है। दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि जिस लक्षणा में रूढ़ि या परंपरा के कारण मुख्यार्थ को छोड़कर उससे संबंध रखने वाला अन्य अर्थ ग्रहण किया जाए, उस स्थान पर रूढ़ि लक्षणा होती है।

उदा. *'राम चौकन्ना है।'*

प्रस्तुत वाक्य में 'चौकन्ना' पद लाक्षणिक है। 'चौकन्ना' का पहले अभिधेय अर्थ (मुख्यार्थ) लिया – 'चार कानों वाला।' इस मुख्यार्थ का वाक्य के 'राम' शब्द के मुख्यार्थ – 'दो कानों वाला व्यक्ति विशेष' के साथ मेल नहीं बैठता। अत: मुख्यार्थ में बाधा हुई। मुख्यार्थ में बाधा होने पर 'लक्षणा' शक्ति से अन्य अर्थ 'सावधान' की प्रतीति हुई। अत: अर्थ निकला – राम दो कानों वाला होते हुए भी चार कानों वाले व्यक्ति के समान (जो चारों ओर की सुन ले) सावधान है। इस अर्थ के बोध होने पर वाक्य में इसकी संगति बैठ गई। अत: यह लाक्षणिक प्रयोग है। 'चौकन्ना' शब्द का मुख्यार्थ से भिन्न 'सावधान'अर्थ में प्रयोग रूढ़ या प्रसिद्ध हो गया है। अत: यह रूढ़ि लक्षणा का उदाहरण हुआ। इसी प्रकार कुशल, प्रवीण, अनुकूल, प्रतिकूल आदि शब्द भी अपने लक्ष्यार्थ के लिए रूढ़ हो जाने के कारण रूढ़ि लक्षणा के उदाहरण हैं।

रूढ़ि लक्षणा में लक्षणा की विशेषता नहीं रह जाती। मुख्य अर्थ की यद्यपि बाधा होती है, परंतु प्रचलन और प्रयोग-प्रवाह के कारण लक्ष्यार्थ इसी प्रकार निकल आता है, जैसे कि यह मुख्यार्थ या वाच्यार्थ हो। अत: इसे लक्ष्यार्थ कहना भी केवल रूढ़ि है। उदा. *मुँह में ताला लगाओ।*

२) प्रयोजनवती लक्षणा – जहाँ वाच्यार्थ का परित्याग और लाक्षणिक अर्थ का ग्रहण किसी विशिष्ट प्रयोजन से किया जाता है, वहाँ प्रयोजनवती लक्षणा होती है। दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि जब किसी शब्द के निश्चित अर्थ को न लेकर किसी अन्य अर्थ को, किसी विशेष प्रयोजन से, ग्रहण किया जाता है, तब प्रयोजनवती लक्षणा होती है।

उदा. *'गंगा में आश्रम है।'*

प्रस्तुत वाक्य में 'गंगा' पद लाक्षणिक है। 'गंगा' शब्द का मुख्यार्थ है – 'निश्चित पथ से प्रवहमान जल विशेष'। जल में या जल पर आश्रम नहीं हो सकता। अत: यहाँ पर 'गंगा' शब्द के मुख्यार्थ का 'आश्रम' शब्द के मुख्यार्थ के साथ मेल नहीं बैठता। अत: मुख्यार्थ में बाधा हुई। मुख्यार्थ में बाधा होने पर

'लक्षणा' शक्ति से अन्य अर्थ 'गंगा का तट' की प्रतीति हुई। फलत: इस अर्थ की वाक्यार्थ के साथ संगति बैठ गई; किंतु इससे लाभ क्या हुआ? इसे 'गंगा के तट पर आश्रम है' ऐसा कहा जा सकता था; किंतु इससे प्रयोजन की सिद्धि नहीं होती। क्योंकि 'तट' तो दूर-दूर तक की भूमि को अपने में समेटे रहता है। अत: 'तट' शब्द के प्रयोग से आश्रम की 'शीतलता एवं पवित्रता' का बोध संभव नहीं था। इसलिए गंगा शब्द का लाक्षणिक प्रयोग किया गया जिससे निकट-नैकट्य भाव संबंध होने के कारण उससे अतिशय शीतलता एवं प्रवित्रता का प्रयोजन व्यक्त होता है। अत: यहाँ पर प्रयोजनवती लक्षणा है।

प्रयोजनवती लक्षणा के भी दो भेद होते हैं -(अ) गौणी (आ) शुद्धा ।

(अ) गौणी लक्षणा - जहाँ पर मुख्य अर्थ की बाधा होने पर सादृश्य संबंध के आधार पर अर्थात् समान रूप, गुण या धर्म के द्वारा अन्य अर्थ ग्रहण किया जाए, वहाँ पर 'गौणी लक्षणा' होती है।

उदा. *'लाला लजपतराय पंजाब-केसरी थे।'*

प्रस्तुत वाक्य में लाला लजपतराय को केसरी अर्थात् सिंह कहा गया है; अतएव मुख्यार्थ में बाधा है; क्योंकि कोई मनुष्य सिंह नहीं होता। किंतु 'केसरी' शब्द के प्रयोग से लालाजी के शौर्य, पराक्रम, वीरता आदि गुणों का उल्लेख अभीष्ट है; अतएव लालाजी में और केसरी में समानता अभिप्रेत है।

(आ) शूद्धा लक्षणा - जहाँ पर मुख्य अर्थ की बाधा होने पर सादृश्य के अतिरिक्त अन्य संबंधों के द्वारा दूसरा अर्थ ग्रहण किया जाए, वहाँ पर 'शुद्धा लक्षणा' होती है। ये अन्य संबंध अनेक होते हैं; जैसे - सामीप्य, तात्कर्म्य, अंगांगि, आधाराधेय, कार्यकारण आदि।

उदा. ' *'अबला जीवन हाय तुम्हारी यही कहानी।*
आँचल में है दूध और आँखों में पानी ।।''

यहाँ आँचल में दूध होना बाधित है; अत: सामीप्य संबंध के द्वारा स्तन में दूध लक्ष्यार्थ है।

अन्य उदा.-१) *मेरे सिर पर क्यों बैठते हो ?*	सामीप्य संबंध
२) *पानी में घर बनाया है, तो सर्दी लगेगी ही !*	
३) *वह मेरे लिए राजा है।*	तात्कर्म्य संबंध
४) *इस घर में नौकर मालिक है।*	
५) *राखी सजी पर कलाई नहीं है।*	अंगांगि संबंध
६) *ये चरण मेरे लिए कल्याणकारी है।*	
७) *जंगल में मचान बोलते हैं।*	
८) *दीवारों के भी कान होते हैं।*	आधाराधेय संबंध
९) *सारा घर तमाशा देखने गया है।*	

१०) *सम्पत्ति ही सुख है।* कार्य-कारण संबंध

११) *सत्संगति ही मोक्ष है।*

2.3.3.3 व्यंजना

व्यंजना का शब्दार्थ है - विशेष रूप से स्पष्ट करना, खोलना या विकसित करना। अभिधा और लक्षणा शक्तियों के अपना अर्थबोध कराने के बाद जिस शक्ति से अन्य अर्थ का बोध होता है, उसे **'व्यंजना'** कहते हैं। ऐसे शब्द को **'व्यंजक'** और अर्थ को **'व्यंग्यार्थ'** कहा जाता है।

व्यंजना शब्द-शक्तियों में सर्वाधिक बलवती शक्ति मानी जाती है। इसके कुछ कारण हैं -

१) व्यंजना शक्ति एक ऐसी शक्ति है, जिसके लिए शब्द में निहित अर्थ की आवश्यकता नहीं पड़ती। 'अभिधा' शब्द के मुख्यार्थ का बोध कराती है, तो 'लक्षणा' मुख्यार्थ से किसी-न-किसी रूप में सम्बद्ध अर्थ का बोध कराती है; किंतु व्यंजना मुख्यार्थ से भिन्न अर्थ का बोध कराती है।

२) अभिधा और लक्षणा तो केवल शब्द में ही निहित रहती हैं, जबकि व्यंजना शब्द और अर्थ दोनों में विद्यमान रहती है।

३) अभिधा और लक्षणा का व्यापार तो एक ही बार होता है, जबकि व्यंजना का व्यापार एक से अधिक बार होता है।

व्यंजना एक उदाहरण दृष्टव्य है -

एक मित्र ने दूसरे से कहा, ''मीत, तिहारे मुख पै शठता अति दरसात।''
दूसरे मित्र ने उत्तर दिया, ''मेरो मुख दरपन भयो, अब जानी यह बात।''

यहाँ 'मुख-दर्पण' का अर्थ बताने में अभिधा असमर्थ है। लक्षणा से यह अर्थ हुआ कि मेरे मुख में तुम्हारा मुख दीखता है। इसके बाद भी वांछित अर्थ नहीं निकला, जो व्यंजना द्वारा ही निकलता है; वह यह कि शठता जो तुम्हें दिखाई देती है, वह तुम्हारी ही है, जो मेरे दर्पण के समान मुख में प्रतिबिंबित होती है; क्योंकि तुम सामने खडे हो। वास्तव में मैं शठ नहीं, तुम शठ हो।

व्यंजना के भेद -

व्यंजना शक्ति का शब्द और अर्थ दोनों में प्रवेश रहता है। इसी आधार पर व्यंजना के दो भेद किए जाते हैं- (१) शाब्दी व्यंजना (२) आर्थी व्यंजना।

१) शाब्दी व्यंजना - जहाँ पर शब्द की प्रधानता है अर्थात् जहाँ पर शब्द विशेष के कारण व्यंग्यार्थ निकलता है और उस शब्द के स्थान पर अन्य शब्द रखने से अर्थ न निकले; वहाँ पर 'शाब्दी व्यंजना' होती है।

उदा. *''चिर जीवौ जोरी जुरै, क्यों न सनेह गंभीर*

को घटि ये वृषभानुजा, वे हलधर के बीर।।''

बिहारी के इस दोहे का सरलार्थ है कि राधा-कृष्ण की जोड़ी चिरंजीवी हो; उनका पारस्परिक प्रेम गहरा है। इस विषय में कोई भी किसी से कम नहीं। यदि राधा वृषभानुसुता है, तो कृष्ण भी हलधर अर्थात् बलराम के भाई हैं। परंतु इसके बाद जो अर्थ निकलता है (वृषभ + अनुजा = बैल की छोटी बहन अर्थात् गाय और 'हलधर के बीर' अर्थात् बैल के भाई बैल), उसका व्यंग्यार्थ हुआ कि राधा-कृष्ण की जोड़ी बिलकुल ठीक है। इन दोनों में गहरा प्रेम है और प्रेम भी बराबर है; क्योंकि एक तो बैल का भाई है, दूसरी बैल की छोटी बहन। यदि उक्त दोहे में 'वृषभानुजा' और 'हलधर' शब्दों के स्थान पर इनके पर्यायवाची शब्द रख दिए जाए, तो व्यंग्यार्थ नहीं रहेगा। अत: यहाँ शाब्दी व्यंजना है।

२) **आर्थी व्यंजना** - जब व्यंग्यार्थ शब्द में न रह कर अर्थ में निहित रहता है, तब आर्थी व्यंजना होती है। व्यंजना शक्ति की यही विशेषता है कि वह शब्द और अर्थ, दोनों में निहित रहती है; जबकि अभिधा और लक्षणा केवल शब्द तक ही सीमित रहती हैं। अत: स्पष्ट है कि अभिधा और लक्षणा केवल शब्द शक्तियाँ ही हैं, जबकि व्यंजना शब्द शक्ति के साथ-साथ 'अर्थ शक्ति' भी है। आर्थी व्यंजना वक्ता, वाक्य, अन्यसन्निधि, वाच्य, प्रकरण, देश-काल आदि की विशेषता के कारण व्यंग्यार्थ की प्रतीति कराती है। वक्ता की विशेषता का एक उदाहरण दृष्टव्य है -

''सागर कूल मीन तड़पत है, हुलसि होत जल पीन।''

यह कथन सामान्यत: कोई महत्त्व नहीं रखता; परंतु जब इस बात का पता चल जाता है कि इसको कहने वाली गोपिकाएँ हैं, तब इसका यह अर्थ निकलता है कि हम कृष्ण के समीप होते हुए भी, मछली के समान तड़प रही हैं। कृष्ण के दर्शन से हमें वैसा ही आनंद प्राप्त होगा, जैसा कि मछली को पानी में जाने से होता है।

प्रकरण या प्रसंग की विशेषता का एक अन्य उदाहरण देखिए -

''नहिं पराग, नहिं मधुर मधु, नहिं विकास इहिं काल।
अली कली ही सौ बंध्यौ, आगे कौन हवाल।।''

उक्त उदाहरण में व्यंग्यार्थ का प्रसार पूरे प्रकरण या प्रसंग तक है। इसमें 'अली' और 'कली' का व्यंग्यार्थ- जिसका संबंध महाराजा जयसिंह एवं उनकी नवविवाहिता पत्नी से है - प्रसंग पर आधारित है। अत: जब तक प्रसंग का ज्ञान न होगा, तब तक इसके व्यंग्यार्थ का बोध भी नहीं रहेगा। प्रस्तुत पद का वाच्यार्थ और व्यंग्यार्थ इस प्रकार है -

वाच्यार्थ - ''हे भौरे ! तू जिस कली के प्रति इतना आसक्त है, उसमें अब तक न तो मधुर मधु ही है और न ही परागकण; क्योंकि अभी तक उसका पूरा विकास नहीं हुआ है। अभी तुम्हारी यह स्थिती है, तो जब इस कली का फूल बन जाएगा, तो तुम्हारी क्या स्थिति होगी?''

व्यंग्यार्थ – ''हे मिर्जाराजा जयसिंह ! तू जिस नवविवाहिता रानी के प्रति इतना आसक्त है, उसके यौवन का अभी तक पूर्ण विकास नहीं हुआ है। अभी तुम्हारी यह स्थिति है, तो जब उसके यौवन का पूर्ण विकास हो जाएगा, तब तुम्हारी क्या स्थिति होगी?''

2.3.2 काव्य–गुण :

काव्य-सर्जना में कुछ तत्त्व सक्रिय रहते हैं, जिनका उपयोग कवि या रचनाकार करता है। शब्द और अर्थ तो काव्य के शरीर होते हैं तथा रस ही उसकी आत्मा के स्थान पर रहता है। रस ही काव्य में मुख्य होता है और 'गुण' इस मुख्य रस के ही धर्म होते हैं और काव्य में रस के साथ गुण का साक्षात् सम्बन्ध रहता है।

रस को काव्य की आत्मा और अलंकारों को कविता का बाह्य सौंदर्य बढानेवाला धर्म स्वीकारने वाले आचार्यो ने गुण का उल्लेख रस और अलंकार दोनों के संदर्भ में किया है। आचार्य मम्मट ने गुण की परिभाषा दी है –

''ये रसस्यादिनो धर्माः शौर्यादय इवात्मनः।

उत्कर्ष हेतवस्ते स्युरचलस्थितयो गुणाः ।।''

अर्थात् जिस तरह मनुष्य के शरीर में शौर्य आदि गुणों की स्वाभाविक स्थिति होती है, वैसे ही कविता में रस को उत्कर्ष प्रदान करनेवाले धर्म को गुण कहा जाता है।

'अग्निपुराण' में कहा गया है कि किसी नारी के शरीर पर स्वाभाविक सौंदर्य आदि गुणों के अभाव में जिस तरह हार आदि आभूषण भार लगते हैं, वैसे ही अलंकारों से युक्त होकर भी काव्य–गुण के अभाव में आनंद प्राप्त नहीं हो सकता है। आचार्य दंडी ने गुण को काव्य का प्राण रूप माना है। गुणों की संख्या के बारे में साहित्यशास्त्रियों के बीच प्रारंभ में मतभेद रहे हैं। लेकिन अंततः काव्य–गुणों की संख्या दस मानी हैं।

1) श्लेष 2) प्रसाद 3) समता 4) समाधि 5) माधुर्य 6) ओज 7) सुकुमारता 8) अर्थव्यक्ति 9) उदारता 10) कान्ति।

अधिकांश आचार्यों ने (दंडी, मम्मट, कुंतक, हेमचंद्र, विश्वनाथ, आनंदवर्धन आदि) माधुर्य, ओज एवं प्रसाद इन तीन गुणों को प्रमुख माना है। आचार्य मम्मट तथा विश्वनाथ ने इन्हीं तीन गुणों में अन्य का समावेश स्वीकृत किया है। हिन्दी के अधिकतर आचार्यों ने भी इन्हीं तीन गुणों को महत्त्वपूर्ण माना है। इन गुणों का परिचयात्मक विश्लेषण निम्नलिखित हैं –

2.3.2.1 माधुर्य गुण :

जिस काव्य की रचना से अन्तःकरण आनंद से भर जाय, वहाँ माधुर्य गुण होता है। कविता में माधुर्य गुण के समावेश के कारण श्रृंगार आदि रसों की प्रस्तुति में आकर्षण का समावेश होता है। इसमें मधुरता–

व्यंजक शब्द तथा वर्ण आदि का प्रयोग किया जाता है। अत: कविता में लगातार रसात्मकता और मधुरता का बोध होता रहे।

माधुर्य गुण की रचनात्मक विशेषताएँ निम्नलिखित हैं –

(अ) इसमें ट, ठ, ड, ढ का प्रयोग न हो।

(ब) वर्गान्त्य वर्णों के प्रयोग से सुकुमारता बढती है।

(क) र, ण वर्ण भी माधुर्य – व्यंजक होते हैं।

(ड) इसमें बहुत छोटे–छोटे समास प्रयुक्त हो।

उदा. : *''कंकन किंकिन नूपुर धुनि सुनि।*

कहत लखन सन राम हृदय गुनि।।

मानहु मदन दुंदुभी दीन्ही।

मनसा विश्व विजय कहँ कीन्ही।। (रामचरितमानस)

2.3.2.2 ओज गुण :

जिस काव्य–गुण के कारण चित्त में स्फूर्ति एवं मन में तेज उत्पन्न हो, उसे ओज कहा गया है। ओजपूर्ण कविता के सुनने मात्र से मन में जोश और आवेग उत्पन्न हो जाता है। इसीकारण वीर, बीभत्स और रौद्र जैसे रसों के लिए ओज गुण की योजना की जाती है। वक्र अर्थवाले लम्बे सामासिक पदों और कठोर वर्णों से बने काव्य द्वारा ओज गुण की प्रस्तुति की जाती है।

ओज गुण की रचनात्मक विशेषताएँ निम्नलिखित हैं –

(अ) ऊपर–नीचे रेफ युक्त वर्णों का प्रयोग हो।

(ब) ट, ठ, ड, ढ तथा श, ष वर्णों का प्रयोग ओजवर्धक होता है।

(क) इसमें दीर्घ समासवाली रचना होनी चाहिए।

(ड) इसकी पद योजना या रचना औचित्यपूर्ण हो।

उदा. : *''इंद्र जिमि जंभ पर बाडव सुअंभ पर*

रावन–सदंभ पर रघुकुल राज है,

पौन बारिबाह पर, संभु रतिनाहु पर,

ज्यों सहस्त्रबाहु पर राम द्विजराज हैं। (कवि भूषण)

2.3.2.3 प्रसाद गुण :

आचार्य विश्वनाथ ने कहा है कि सूखे ईंधन में अग्नि के समान या धुले हुए वस्त्र में पानी की भाँति तत्काल मन में व्याप्त हो जानेवाला गुण प्रसाद है। यह गुण ऐसा सरल और सुबोध अर्थ व्यक्त करता है कि पंक्तियों से गुजरते ही कविता साकार हो उठती है।

प्रसाद गुण की रचनात्मक विशेषताएँ निम्नलिखित हैं –

(अ) प्रसाद गुण के लिए कोई वर्ण संघटना नहीं है।

(ब) प्रसाद गुण के लिए कोई वर्ण त्याज्य या सीमित नहीं है।

(क) सभी रसों में तत्काल अर्थ प्रदान करता है।

(ड) प्रसाद गुण व्याप्त एवं प्रसन्नता देता है।

उदा. : *''चारूचन्द्र की चंचल किरणे, खेल रहीं हैं जल–थल में।*
बिमल चाँदनी बिछी हुई है अवनि और अंबरतल में।
पुलक प्रकट करती है धरती हरित तृणों की नोकों से।
मानो झीम रहे हैं तरू भी मन्द पवन के झोंको से।।'' (पंचवटी)

2.3.3 काव्य–दोष :

आचार्य भरत ने जब महान निर्दोषिता को काव्य–गुण की संज्ञा दी थी, तब दोषरहित काव्य–सृजन की पहल की थी। आचार्य भामह ने लिखा है कि काव्य–सृजन न करना कोई अपराध नहीं है, लेकिन सदोष काव्य- रचना करना तो साक्षात् मृत्यु है।

काव्य में दोषों को टालना कविता की प्रारंभिक अनिवार्यता के रूप में अनेक साहित्यशास्त्रियों ने मान्यता दी हैं। मम्मट ने तो काव्य की परिभाषा में ही दोषों का विरोध किया है –

''तद्दोषौ शब्दार्थों सगुणावनलंकृति पुनः क्वापि।''

आचार्य भरत एवं वामन ने काव्य–दोष को काव्य–गुण का विपर्य माना है। काव्य–दोषों की संख्या पर काफी विचार–विमर्श विविध विद्वानों ने किया हैं। आचार्य विश्वनाथ ने दोष की परिभाषा देते हुए लिखा है – ''रसापकर्षका दोषा:'' मतलब 'दोष' वे हैं, जो रस या काव्य के आत्म तत्त्व के अपकर्षक होते हैं। लेकिन सभी मतों का सार रूप स्वीकार करें, तो आज काव्य–दोष के तीन भेद स्वीकार किए गये हैं – शब्द दोष, अर्थ दोष, रस दोष।

2.3.2.1 शब्द दोष (पद दोष) :

काव्य में आनंद प्रदान करनेवाला प्रारंभिक अवयव शब्द या पद होता है। इस नाते यदि शब्दों के संघटन में ही दोष हो, तो संपूर्ण कविता का प्रभाव तथा आनंद समाप्त होता है। इसीलिए जहाँ शब्द या पद रचना और प्रयोग के कारण काव्यार्थ की प्रतीति में बाधा उत्पन्न होती है, वहाँ पद्गत दोष या पद दोष कहा जाता है। आचार्य मम्मट ने पद दोष के १६ प्रकार बताए हैं। उनमें से कुछ दोषों का विवेचन निम्न प्रकार से हैं–

(अ) श्रुति कटुत्व : काव्य रचना करते समय सुनने में मधुर शब्दों का प्रयोग करना चाहिए। रस के विपरित कानों को खटकनेवाले कठोर वर्ण प्रयोग से श्रुति कटुत्व दोष होता है।

उदा. : *''ठाट है सर्वत्र घर या घाट है।*

लोक-लक्ष्मी की विलक्षण हाट है।''

इन पंक्तियों में ट, ठ जैसे कठोर वर्ण प्रयोग के कारण श्रुति कटुत्व आया है।

(ब) अश्लीलता : यह दोष किसी ऐसे पद के प्रयोग के कारण होता है, जिससे अभिप्रेत अर्थ निकलने के साथ ही कोई लज्जा, घृणा और अमंगलकारी अर्थ भी निकलते हैं।

उदा. : *''गिर जाय कहीं यदि किसी से मूल्यवान वस्तु*

लोभ से उठाना उसे चाटना है नाक का।''

यहाँ 'नाक का चाटना' घृणा व्यंजक होने के कारण अश्लीलता प्रकट करता है।

शब्द या पद दोषों के माध्यम से यही सूचित होता है कि कविता में सरल, सहज एवं बोध गम्य शब्दों का प्रयोग होना चाहिए।

2.3.3.2 अर्थगत दोष (अर्थ दोष) :

काव्य में शब्दों का अर्थ-ग्रहण ही आनंद एवं प्रभाव उत्पन्न करता है। जहाँ अर्थ ग्रहण में बाधा होती है, वहाँ अर्थ दोष पाए जाते हैं। आचार्य मम्मट ने २३ प्रकार के अर्थ दोषों का उल्लेख किया है। अर्थ समझने में किसी प्रकार के कष्ट नहीं होने चाहिए। अर्थ में परस्पर विरोध नहीं होने चाहिए। अर्थ प्रकटीकरण में नवीनता आनी चाहिए। अर्थ को जान लेने पर चित्त में न तो अमंगल की भावना होनी चाहिए और न उद्वेग भी उत्पन्न होना चाहिए।

आचार्य विश्वनाथ के मतानुसार किसी पद के मुख्य अर्थ के अनुपकारी होने पर अपुष्ट दोष होता है। जिस पद की अनुपस्थिति पर भी अर्थ को हानि नहीं पहुँचती हो।

उदा. : *''सारे उपवन के विशाल वायुमण्डल में*

प्रेमी प्रीति-संभव के मंगल मनाते हैं।''

इस पद में विशाल विशेषण निरर्थक है; क्योंकि वायु मंडल तो विशाल होता ही है। जहाँ एक ही शब्द और अर्थ की बार-बार आवृत्ति हो, वहाँ पुनरुक्त अर्थ दोष होता है। इससे कवि के शब्द दारिद्र्य का पता चलता है।

उदा. : *''धन्य है कलंक हीन जीना एक क्षण का*

युग-युग जीना सकलंक धीक्कार है।''

स्पष्ट है कि पुनरूक्त अर्थ दोष के कारण कविता वे प्रभाव और आनंद में बाधा उपस्थित हुई है।

2.3.3.3 रसगत दोष (रस दोष) :

रस कविता का अनिर्वचनीय आनन्द है, लेकिन जहाँ रसास्वाद में बाधा उत्पन्न हो जाती है - वहाँ विद्वानों ने विविध रस दोषों को स्वीकृत किया है। वैसे देखा जाय तो कविता में रस का स्पष्ट उल्लेख अपने आप में एक दोष है। कई कवियों ने रस के स्थायी, संचारी और व्याभिचारी भावों को स्वयं वर्णित कर रस

के स्वाभाविक उद्रेक को बाधित किया है। आचार्य मम्मट ने तेरह प्रकार के रस दोषों की चर्चा की है। स्वशब्द वाच्यता तो सर्वप्रमुख रस दोष है।

उदा. : *"आह कितना सकरूण मुख था,*
आर्द्र सरोज अरुण मुख था।"

इन पंक्तियों में करुण रस का कवि स्वयं उल्लेख करता है।

जहाँ रस स्थायीभाव या व्यभिचारी भाव की पुष्टि उनसे सम्बन्धित भावों का वर्णन किए बिना ही उनके शब्दश: कथन से की जाए, वहाँ रस दोष होता है।

उदा. : *"ज्यों ही चूमा प्रिय ने उसको*
लज्जा मन आयी।"

रसों के पारस्परिक विरोध की एक पंक्ति निम्नलिखित रूप ङ्कें दृष्टव्ङ्क है -

उदा. *"इस पार प्रिये तुम हो मधु है*
उस पार न जाने क्या होगा?"

कुल मिलाकर दोषपूर्ण काव्य निंदा का पात्र होता है। चाहे उसमें शब्द, अर्थ और रस दोष में से कोई भी एक हो। कविता का अपकर्ष करनेवाले दोषों से बचकर ही कोई श्रेष्ठ कवि हो सकता है।

2.4 स्वयं अध्ययन के लिए प्रश्न :

(अ) निम्नलिखित वाक्यों में दिए गए पर्यायों में से उचित पर्याय चुनकर वाक्य फिर से लिखिए।

1. शब्दशक्ति के प्रमुख .... प्रकार हैं।

   (अ) दो (ब) तीन (क) पाँच (ड) एक

2. अभिधा और लक्षणा शक्तियों से अपना अर्थबोध कराने के बाद जिस शक्ति से अन्य अर्थ का बोध होता है, उसे .... कहते है।

   (अ) व्यंजना (ब) अभिधा (क) लक्षणा (ड) मुख्यार्थ

3. गद्य और पद्य के मिले-जुले रूप को .... कहा जाता है।

   (अ) नाटक (ब) एकांकी (क) चंपू काव्य (ड) पद्य

4. कविता की आत्मा .... होती है।

   (अ) रस (ब) शब्द (क) अर्थ (ड) अलंकार

5. अधिकतर विद्वान काव्य में प्रमुख .... गुण मानते हैं।

   (अ) पाँच (ब) तीन (क) दो (ड) एक

6. ओज गुण मन में .... उत्पन्न करता है।

   (अ) तेज (ब) निराशा (क) आनंद (ड) क्रोध

7. जहाँ अर्थ ग्रहण में बाधा होती है वहाँ .... दोष होता है।

(अ) पद (ब) अर्थ (क) शब्द (ड) श्रृति

2.5 पारिभाषिक शब्द, शब्दार्थ :

1. **अभिधा–** स्पष्ट उक्ति
2. **लक्षणा –** सामान्य अर्थ से भिन्न अर्थ देनेवाली शक्ति
3. **व्यंजना –** भाव प्रकट करने की एक शब्द शक्ति
4. **योग –** व्युत्पत्ति
5. **तरू –** वृक्ष
6. **संध्या –** शाम
7. **चिरजीवि –** अमर
8. **जोरी –** जोडी
9. **वृषभ –** बैल
10. **नूपुर –** पायल
11. **चारू –** सुंदर
12. **तरू –** वृक्ष, पेड
13. **बिमल –** स्वच्छ, पवित्र
14. **उपवन –** बगिचा
15. **अरूण –** लाल रंग

2.6 स्वयंअध्ययन प्रश्नों के उत्तर :

(अ) उचित पर्याय.

1. (ब) 2. (अ) 3. (क) 4. (अ) 5. (ब) 6. (अ) 7. (ब)

2.7 सारांश :

1. काव्यशास्त्र के अंतर्गत काव्य और साहित्य एक-दूसरे के समानार्थी समझे गए हैं।
2. शब्दशक्ति के तीन भेद अभिधा, लक्षणा और व्यंजना का विवेचन करना उपयुक्त है।
3. काव्य-गुण मुख्य रस के धर्म होते हैं। काव्य में रस के साथ गुण का साक्षात् सम्बन्ध रहता है।
4. काव्य-दोष के तीन भेद स्वीकार किए गये हैं - शब्द दोष, अर्थ दोष, रस दोष।

5. काव्य-सर्जना में शब्द, अर्थ तथा रस आदि कुछ तत्त्व सक्रिय रहते हैं, जिसका उपयोग कवि या उचनाकार करता है।

2.8 स्वाध्याय :

निम्नलिखित विषयों पर टिप्पणियाँ लिखिए।

1. अभिधा।
2. लक्षणा।
3. व्यंजना।
4. काव्य-गुण की विवेचना।
5. माधुर्य गुण।
6. ओज गुण।
7. प्रसाद गुण।
8. काव्य-दोष की विवेचना।
9. पदगत दोष।
10. अर्थगत दोष।
11. रसगत दोष।

2.9 क्षेत्रीय कार्य :

1. ग्रंथों आदि से प्रयुक्त काव्य, के शब्दशक्ति प्रकारों का वर्गीकरण कीजिए।
2. विविध कविताओं में माधुर्य, ओज, प्रसाद गुण ढूँढकर लिखिए।
3. विविध कविताओं में पद्गत, अर्थगत, रसगत दोष लिखिए।

2.10 अतिरिक्त अध्ययन के लिए :

1. काव्यशास्त्र - डॉ. भगीरथ मिश्र
2. काव्यशास्त्र - डॉ. कन्हैयालाल अवस्थी, डॉ. अमित अवस्थी
3. काव्यशास्त्र - डॉ. बालेन्दु तिवारी, डॉ. सुरेश माहेश्वरी
4. साहित्यशास्त्र - डॉ. भरत सगरे
5. हिंदी भाषा और साहित्यशास्त्र - डॉ. माधव सोनटक्के

❑❑❑

इकाई –3
रस : स्वरूप, रस के अंग, रस के भेद

अनुक्रम

3.1 उद्देश्य

3.2 प्रस्तावना

3.3 विषय – विवेचन

3.3.1 रस : स्वरूप

आचार्य भरतमुनि

आचार्य विश्वनाथ

आचार्य मम्मट

आचार्य रामचंद्र शुक्ल

डॉ. दशरथ ओझा

रस की विशेषताएँ

3.3.2 रस के अंग

स्थायी भाव

विभाव

अनुभाव

संचारी भाव/व्याभिचारी भाव

3.3.3 रस के भेद

श्रृंगार रस

वीर रस

हास्य रस

रौद्र रस

भायानक रस

बीभत्स रस

करूण रस

अद्‌भुत रस

शांत रस

वात्सल्य रस

भक्ति रस

3.4 स्वयंअध्ययन के लिए प्रश्न

3.5 पारिभाषिक शब्द, शब्दार्थ

3.6 स्वयं अध्ययन के प्रश्नों के उत्तर

3.7 सारांश

3.8 क्षेत्रीय कार्य

3.9 अतिरिक्त अध्ययन के लिए

3.1 उद्‌देश्य :

प्रस्तुत इकाई पढने के पश्चात् आप,

1. रस के महत्त्व से परिचित होंगे।
2. रस की विभिन्न परिभाषाओं से अवगत होंगे।
3. रस के विभिन्न अंगों से परिचित होंगे।
4. रस के विभिन्न भेदों से परिचित होंगे।
5. काव्य में प्रयुक्त रस पहचानने में सक्षम होंगे।

3.2 प्रस्तावना :

'रस' शब्द भारतीय संस्कृति और साहित्य के चरम विकास से संबंधित है। भारतीय जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में 'रस' शब्द का प्रयोग सर्वोत्कृष्ट तत्त्व के लिए होता है। फलों का रस, औषधि का रस, परमात्मा के भाव से उत्पन्न रस, संगीत द्‌वारा उत्पन्न रस आदि रस के विभिन्न अर्थ दिखाई देते हैं। जीवन के सुव्यवस्थित निर्माण के लिए रस अनिवार्य है। अत: इससे स्पष्ट होता है कि रस आस्वाद्‌य तत्त्व और द्रवत्त्व के रूप में दिखाई देता है।

'रस' शब्द की व्युत्पत्ति संस्कृत में इस प्रकार दी है, ''रसस्यतेऽ सौ इति रस:'' अर्थात जिससे आस्वाद मिले वही रस है। रस शब्द साहित्य में ही नहीं, बल्कि जीवन के हर पहलुओं में भिन्न-भिन्न अर्थ में प्रयुक्त किया जाता है। संस्कृत काव्यशास्त्र में काव्यानुभूति को 'रस' संज्ञा से अभिहित किया गया है। काव्य का लक्ष्य तथा उद्देश्य पाठक को आनंदानुभूति प्रदान करना है। इस काव्यजन्य आनंद का ही दूसरा नाम रस है।

साहित्य में रस को आत्मा की संज्ञा से अभिहित किया है। रस रहित काव्य सफल काव्य नहीं होता। अत: काव्यानंद को ही रस कहा गया है।

3.3 विषय विवेचन :

अब हम रस का स्वरूप, रस की परिभाषाएँ, रस के अंग तथा रस के भेदों का अध्ययन करेंगे। अत: भारतीय साहित्य में रस के स्वरूप पर विविध कोनों से विचार-विमर्श हुआ। उन्होंने अपनी-अपनी दृष्टि से रसांगों पर विवेचन दिया। कई आचार्यों-मनीषियों द्वारा रस पर सम्यक विवेचन मिलता है। निम्नांकित आचार्यो द्वारा दी हुई परिभाषाओं से रस के स्वरूप को स्पष्ट करने में सहायता मिलती है।

3.3.1 रस का स्वरूप :

आचार्य भरतमुनि :

रस सिद्धांत के प्रवर्तक आचार्य भरतमुनि माने जाते हैं। उन्होंने 'नाट्यशास्त्र' में रस के विभिन्न अवयवों का विवेचन किया है। भरतमुनि के कार्य को भट्ट लोल्लट, शंकुक, भट्ट नायक, अभिनव गुप्त, भोजराज, विश्वनाथ आदि परवर्ती आचार्यों ने आगे बढाया। आगे चलकर हिंदी के रीतिकालीन आचार्यों ने भी रस सिद्धांत का महत्त्व स्वीकार किया है। तथा रस को परिभाषित करने का प्रयास किया है। भरतमुनि ने 'नाट्यशास्त्र' में रस की परिभाषा इस प्रकार दी है...

''विभावानुभावव्यभिचारिसंयोगा द्रस निष्पत्ति:''

उनके मतानुसार विभाव अनुभाव और व्याभिचारी भावों के संयोग से रस की निष्पत्ति होती है। इस रस सूत्र में रस निष्पत्ति के लिए आवश्यक विभाव, अनुभाव और व्याभिचारी भाव इन तीन अंगों का निर्देश किया गया है। भरतमुनि के रस-सूत्र पर काफी विचार-विमर्श हुआ। कई आचार्यों ने भिन्न-भिन्न रूप में इसे परिभाषित करने का प्रयास भी किया है। स्वयं भरतमुनि ने अपने रस-सूत्र की व्याख्या देते हुए लिखा है - ''जिस प्रकार नाना व्यंजनों, औषधियों और द्रव्यों के संयोग से रस (भोज्यरस) की निष्पत्ति होती है, उसी प्रकार नाना भावों के उपरांत वो स्थायी भाव रस रूप को प्राप्त होते हैं।'' अर्थात् विभाव, अनुभाव तथा व्याभिचारी भावों के संयोग से सामाजिक में स्थित स्थायी भावों का उद्रेक होता है और वे ही स्थायी भाव रस रूप को प्राप्त होता है।

आचार्य अभिनव गुप्त:

भरमुनि के रस-सूत्र के व्याख्याता अभिनव गुप्त ने रस को 'विषय' से निकालकर 'विषयी' में समाविष्ट करने का सफल प्रयास किया है। वे रस को 'अस्वाद्य' न मानकर 'आस्वाद्य' मानते हैं। सामाजिक किसी विशिष्ट प्रसंग के साथ एकाकार होकर आत्म-विभोर हो जाता है। यही आनंदमयी चेतना रस है।

आचार्य विश्वनाथ:

अभिनव गुप्त के पश्चात् रस के स्वरूप का सर्वांग विवेचन आचार्य विश्वनाथ ने किया है। वे कहते हैं-

''सत्त्वोद्रेक अखण्ड स्वप्रकाशानन्द चिन्मयः।
वेद्यान्तरस्पर्शशून्यो ब्रह्मास्वाद सहोदरः।
लोकोत्तर चमत्कार प्राणः कैश्चिद् प्रमातृभिः।
स्वाकारवदभिन्नत्त्वेनायमास्वाद्यते रसः।।''

अर्थात् चित्त में सत्वोद्रेक की स्थिति में विशिष्ट संस्कारों से युक्त सहृदय, अखंड, स्वप्रकाशानंद, चिन्मय, अन्य सभी प्रकार के ज्ञानों से विमुक्त, ब्रह्मानंद सहोदर, लोकोत्तर चमत्कार, प्राण रस के निज स्वरूप से अभिन्न होकर अस्वादन करते हैं।

आचार्य मम्मट :

आचार्य मम्मट के अनुसार, ''विभावादि के संयोग से निष्पन्न होनेवाली आनंदात्मक चित्तवृत्ति ही रस है।''

आचार्य रामचंद्र शुक्ल :

आचार्य रामचंद्र शुक्ल जी ने रस को परिभाषित करते हुए लिखा है, ''सत्त्वोद्रेक या हृदय की मुक्तावस्था ही 'रस' है।''

डॉ. दशरथ ओझा :

इन्होंने रस की परिभाषा देते हुए लिखा है, ''काव्य के पढने या नाटक के देखने से हमारे हृदय में जो क्रोध, घृणा, प्रेम आदि भाव जगते हैं, उसे 'रस' कहते हैं।''

डॉ. भगीरथ मिश्र :

डॉ. भगीरथ मिश्र के अनुसार, ''रस एक विशेष प्रकार का आनंद है, जो काव्य के मनन, पठन, श्रवण और अभिनय देखने से सामाजिक को प्राप्त होता है।''

उपरोक्त परिभाषओं से स्पष्ट होता है कि, आचार्य मम्मट से लेकर नगेंद्र तक आचार्यों ने रस को इसी रूप में परिभाषित किया है। उनके अनुसार 'स्व' पर की भावना से रहित, देश-काल के बंधनों से मुक्त सामाजिक जब एक आनंदमयी स्थिति में पहुँच जाता है, तब उस स्थिति को रसासक्ति कहते हैं। अर्थात् किसी सामाजिक का किसी विशिष्ट आनंदमयी घटना से आनंदमयी स्थिति में पहुँच जाना तथा अत्म-विभोर होना ही रस है।

रस की विशेषताएँ :

उपरोक्त परिभाषाओं के विवेचन के आधार पर हम कह सकते हैं कि, रस आस्वादरूप है। सहृदय सामाजिक जिसका रसन या भोग करता है। रस निर्विघ्न तथा अखंड होता है। रस चिन्मय, स्वप्रकाश और अन्य ज्ञानरहित होता है। रस आस्वादन के समय अन्य किसी प्रकार के ज्ञान का स्पर्श नहीं होता। रस

लोकोत्तर चमत्कार प्राण है। रस की स्थिति अपने स्वरूप से भिन्न रूप होती है। काव्य के पठन, श्रवण से तथा नाटक को दृष्य रूप में देखने से सामाजिक रसानंद प्राप्त करता है। अत: रस ब्रह्मानंद सहोदर होता है।

3.3.2 रस के अंग :

''विभावानुभावव्यभिचारीसंयोगाद्रसनिष्पत्ति:'' भरतमुनि के इस रस-सूत्र के अनुसार विभाव, अनुभाव और व्यभिचारी भावों के संयोग से रस की निष्पत्ति होती है। अत: इन्हें ही रस के अंग के रूप में स्वीकार किया गया है। परंतु भरतमुनि के रस सूत्र में रस के केवल तीन ही अंगों का उल्लेख है। इसमें स्थायी भाव का उल्लेख नहीं मिलता है। अत: स्थायी भाव को मिलाकर रस के चार अंग माने जाते हैं, जो निम्नलिखित हैं -

1. स्थायीभाव
2. विभाव
3. अनुभाव
4. व्याभिचारी भाव

रस के इन चार अंगों का विवेचन निम्न प्रकार किया जा सकता है -

1. स्थायी भाव :

भरतमुनि से लेकर आज तक के आचार्यों द्वारा किए गए विचार विमर्श और निष्कर्षों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि 'सहृदय' सामाजिक के हृदय में जन्मजात वासना रूप में वे अनुभूतियाँ हैं, जो स्थायी रूप से विद्यमन रहती है। इन अनुभूतियों को वृत्तियाँ भी कहा जाता है। ये वृत्तियाँ और अनुभूतियाँ अन्य अनुभूतियों और वृत्तियों की तुलना में अधिक तीव्र, गतिशील एवं सूक्ष्म होती है। इन्हें मूल वृत्ति, मौलिक मनोवेग या स्थायी भाव भी कहा जाता है।

स्थायी भाव सहृदय के हृदय में उद्दिप्त होकर संचारी भाव की सहाय्यता से रस रूप में परिणत होते हैं। इनका विकास धीरे-धीरे होता है और ये सहृदय के हृदय में देर तक अस्तित्व में रहते हैं। स्थायी भाव मानव चित्त की भावना अथवा संस्कार है। स्थायी भाव सहृदय के हृदय में छिपे रहते हैं, जो विभाव और अनुभाव से उद्दिप्त होते हैं। स्थायी भावों की अभिव्यक्ति मनोविकारों और भौतिक या शारीरिक प्रतिक्रियाओं के रूप में होती है।

स्थायी भावों की संख्या को लेकर विद्वानों में विवाद है। कुछ विद्वानों के अनुसार स्थायी भावों की संख्या नौ है, तो कुछ विद्वानों के अनुसार स्थायी भावों की संख्या ग्यारह है। मूलत: स्थायी भाव नौ ही माने जाते हैं, लेकिन कुछ विद्वानों के अनुसार वत्सल और भगवत् प्रेम की गनना भी स्थायी भावों में की जाती है। अत: वत्सल और भगवत् प्रेम को जोडकर स्थायी भावों की संख्या ग्यारह मानी जाती है। स्थायी भावों के नामकरण इस प्रकार किये जाते हैं -

1. रति　　2. उत्साह　　3. हास

4. क्रोध　　5. भय　　6. जुगुप्सा

7. शोक　　8. विस्मय　　9. निर्वेद

10. वत्सल　　11. भगवत् प्रेम

सामाजिक में वासना रूप में विद्यमान इन्हीं स्थायी भावों से व्युत्पन्न ग्यारह रस इस प्रकार हैं –

1. श्रृंगार रस　　2. वीर रस　　3. हास्य रस

4. रौद्र रस　　5. भयानक रस　　6. बीभत्स रस

7. करूण रस　　8. अद्भुत रस　　9. शांत रस

10. वात्सल्य रस　　11. भक्ति रस

2. विभाव :

आचार्य भरतमुनि ने अपने 'रससूत्र' में प्रथम विभाव का ही उल्लेख किया है। भरतमुनि के अनुसार विभाव का अर्थ विज्ञान है। वे व्यक्ति या पदार्थ जो भावोत्तेजना के मूल कारण हैं, वे विभाव कहलाते हैं। वाचिक, आंगिक तथा सात्त्विक अभिनय के सहारे चित्तवृत्तियों का विशेष रूप से विभाजन अर्थात् ज्ञापन करनेवाले हेतु कारण अथवा निमित्त को ही विभाव कहा जाता है। विभाव के दो भेद माने जाते हैं –

(अ) आलंबन विभाव

(आ) उद्दीपन विभाव

(अ) आलंबन विभाव :

किसी भी भाव का उद्गम जिस मुख्य भाव या वस्तु के कारण होता है, वह काव्य में आलंबन है। आलंबन विभाव के कारण आश्रम में स्थायी भाव उद्दीप्त हो जाता है, अर्थात् स्थायी भाव जिसके विषय में होता है, उसे आलंबन विभाव कहा जाता है।

उदा. पुष्पवाटिका प्रसंग में सीता को देखकर सीता के प्रति राम के हृदय में रति स्थायी भाव जागृत होता है। यहाँ सीता आलंबन है, उसी के कारण तथा उसी के प्रति राम का रति स्थायी भाव जागृत होता है।

आलंबन के कारण जिसके हृदय में स्थायी भाव जागृत होता है, वह आश्रय कहलाता है। प्रस्तुत उदाहरण में राम आश्रय है।

(आ) उद्दीपन विभाव :

आलंबन का रूप एवं उसकी चेष्टाएँ उद्दीपन विभाव कहलाती हैं। आलंबन का रूप और उसके द्वारा की गयी चेष्टाएँ आश्रय के हृदय में उद्बुद्ध स्थायी भाव को इसी प्रकार उद्दीप्त करती हैं, जिस प्रकार लकडियों द्वारा जलाई गयी अग्नी घी डालने से और भी उद्दीप्त हो जाती है।

उदा. उपर्युक्त पुष्पवाटिका प्रसंग में सीता की मोहक सुंदरता, मधुर वाणी, आकर्षक वेषभूषा, केशभूषा, मुस्कुराना आदि के कारण आश्रय राम के हृदय में वासना रूप में स्थित रति स्थायी भाव अधिक-से-अधिक उद्‌बुद्‌ध होता है। तथा रति स्थायी भाव को अधिक उत्तेजित करने में तथा पुष्ट करने में सीता की मोहक सुंदरता तथा सजना-सँवरना सहायक होता है।

आलंबन के संदर्भ में और एक बात कही जा सकती है कि, कुछ स्थायी भावों के आलंबन निश्चित होते हैं, तो कुछ ऐसे हैं जिनका आलंबन देश कालानुसार कोई भी हो सकता है।

3. अनुभाव :

'अनु' का अर्थ है 'पीछे' अर्थात् स्थायी भाव के पश्चात् प्रकट होनेवाले मनोविकार और आश्रय की चेष्टाएँ अनुभाव कहलाती है। अनुभाव स्थायी भाव और विभाव के पश्चात् आश्रय में प्रकट होते हैं। अनुभाव में आश्रय के मानसिक विकार और शारीरिक क्रियाएँ दृष्टिगत होती हैं। अर्थात् जिनसे भावों का अनुभव होता है, वह अनुभाव है। आचार्य विश्वनाथ ने आलंबन उद्‌दीपन आदि कारण से उत्पन्न भावों को बाहर प्रकाशित करनेवाले कार्य को अनुभाव कहा है। अनुभाव वाणी तथा अंग संचालन आदि के कारण आश्रय के हृदय में जागृत होते हैं।

उदा. पुष्पवाटिका प्रसंग में राम आश्रय के हृदय में आलंबन सीता के कारण तथा सीता से प्रकट उद्‌दीपन विभाव के कारण रति स्थायी भाव प्रकट होता है। तथा उत्तरोत्तर उसमें वृद्‌धि होती है। उसके पश्चात् आश्रय राम के द्‌वारा जो चेष्टाएँ या कार्य किए जाएँगे, उन्हें ही अनुभाव संज्ञा से अभिहित किया जाता है।

विद्‌वानों ने अनुभाव के चार भेद माने हैं -

(क) आंगिक अनुभाव (ख) वाचिक अनुभाव (ग) आहार्य (घ) सात्विक

(क) आंगिक अनुभाव :

इसे कायिक अनुभाव भी कहा जाता है। आश्रय की शरीर संबंधी चेष्टाएँ आंगिक या कायिक अनुभाव कहलाती है। इसके अंतर्गत शारीरिक कृत्रिम चेष्टाओं का समावेश किया जाता है, जैसे - कटाक्ष, भृकुटि भंग, पलकों का उठना, गिरना। नायिका के संदर्भ में होंठ काटना, पैरों से जमीन कुरेदना, पल्लू के साथ खेलना आदि शारीरिक अनुभाव आंगिक या कायिक अनुभाव के अंतर्गत आते हैं।

(ख) वाचिक अनुभाव :

वाणी से संबंधित अनुभाव वाचिक अनुभाव कहलाते हैं। आश्रय की वाणी की मृदुता अथवा उग्रता वाचिक अनुभाव कहलाती है।

(ग) आहार्य :

भाव-व्यंजक अनुभावों में आश्रय की विशिष्ट वेशभूषा और साज-सज्जा आदि को आहार्य अनुभाव के अंतर्गत रखा जाता है।

(घ) सात्विक अनुभाव :

सात्विक अनुभाव ही अयत्नज अनुभाव भी कहलाते हैं। इनकी अभिव्यक्ति सहज अर्थात अपने आप होती है। इसके लिए आश्रय को कोई क्रिया करने की आवश्यकता नहीं होती है। इनका उद्रेक सहज ही होता है। इनकी संख्या आठ मानी जाती है।

1. स्तंभ	2. स्वेद	3. रोमांच	4. स्वरभंग
5. कंप	6. वैवर्ण्य	7. अश्रु	8. प्रलय

1. **स्तंभ :** प्रेम, शोक, भय, क्रोध आदि के कारण शरीर की गति का रूक जाना स्तंभ कहलाता है।
2. **स्वेद :** प्रेम, भय, लज्जा आदि के कारण पसीना आना स्वेद कहलाता है।
3. **रोमांच :** प्रेम, हर्ष, भय आदि के कारण शरीर के रोओं का खडा होना रोमांच कहलाता है।
4. **स्वरभंग :** प्रेम, शोक, भय आदि के कारण वाणी का अवरूद्ध होना स्वरभंग कहलाता है।
5. **कंप :** प्रेमाधिक्य, भय व क्रोध के कारण शरीर का कंपित होना कंप कहलाता है।
6. **वैवर्ण्य :** भय, शोक, शंका आदि के कारण मुखमंडल का कांतिहीन होना वैवर्ण्य कहलाता है।
7. **अश्रु :** हर्षातिरेक या शोक के कारण आश्रुओं का आना।
8. **प्रलय :** विरह, दुःख, शोक, भय, क्रोध आदि के कारण इंद्रियों का चेतनाशून्य होना प्रलय होता है।

4. संचारी भाव तथा व्यभिचारी भाव :

संचारी भाव वे मानोवेग या शारीरिक प्रतिक्रियाएँ हैं, जो स्थायी भावों की पुष्टि के लिए संचरणशील होते हैं। भरतमुनि ने इसे व्यभिचारीभाव की संज्ञा से अभिहित किया है। किसी एक भाव के साथ इनका नियत संबंध न रहने के कारण इन्हें व्यभिचारी भाव कहा जाता है। इनकी प्रवृत्ति चंचल होती है। इनकी संचरणशील अर्थात् घुमते रहने की प्रवृत्ति, इन्हें संचारी कहलाती है।

संचारी भाव आश्रय के हृदय में उद्दीप्त स्थायी भाव के साथ बीच-बीच में प्रकट होकर उस स्थायी भाव को अधिक पुष्ट बनाने में सहायता करते हैं। यह उद्दीप्त होने पर तुरंत लुप्त हो जाते हैं, अर्थात् संचारी भाव क्षणजीवी होते हैं।

उदा. सागर में लहरें उत्पन्न होती हैं और सागर ही में विलीन हो जाती हैं। वैसे ही स्थायी भाव में संचारी भाव उत्पन्न होकर नष्ट होते हैं। संचारी भाव स्थायी भाव के पोषक होते हैं।

संचारी भावों की संख्या को लेकर मतभेद हैं। इनकी संख्या समयानुरूप परिवर्तित होती है। फिर भी कुछ विद्वान इनकी संख्या तैंतीस मानते हैं। संस्कृत काव्यशास्त्र के अनुसार संचारी भाव निम्नलिखित हैं –

निर्वेद, आवेग, दैन्य, श्रम, मद, जडता, मोह, विबोध, स्वप्न, अपस्मार, गर्व, मरण, आलसता, अमर्ष, हर्ष, अवहित्य, औत्सुक्य, उन्माद, शंका, स्मृति, मति, व्याधि, संत्रास, लज्जा, असूया, ग्लानि, धति, विदा, चिंता, दैन्य, उग्रता, चपलता, वितर्क।

निष्कर्ष :

रस की निष्पत्ति के लिए स्थायी भाव, विभाव, अनुभाव इन रस के अंगों का परस्पर संयोग होना अनिवार्य प्रक्रिया है। इस संयोगात्मक प्रक्रिया से ही रस की निष्पत्ति अर्थात सहृदय को रस की अनुभूति हो सकती है। उद्दीपन विभाव के कारण आश्रय के हृदय में रस की गति बढ जाती है और संचारी भावों के कार्यान्वित होने से रस अधिक पुष्ट बन जाता है और सामाजिक अधिक - से - अधिक रसानंद प्राप्त कर सकते हैं।

3.3.3 रस के भेद :

रस अखंड होता है। फलत: अखंड वस्तु के भेदोपभेदों की चर्चा करना उचित नहीं है। फिर भी व्यावहारिक दृष्टि से रस को समझने और समझाने के लिए उसके भेदोपभेदों की चर्चा करना अनिवार्य है। जब हम रस के भेदों की चर्चा करते हैं, तब हमारा तात्पर्य रस भेदों से न होकर स्थायी भावों के भेदों से होता है, जो विभावादि के संयोग से एक नवीन रूप में उपस्थित होते हैं।

जैसे, प्रकाश एक ही होता है, लेकिन उसे समझने के लिए ट्यूब लाईट, बल्ब लाईट, मरक्यूरी लाईट आदि में उसको विभाजित किया जाता है। तथा अन्न (आहारादि) को हलवा, पूरी, सीरा, रोटी, रबडी आदि एक ही अन्न के घटक है। अपितु समझने तथा समझाने के लिए उसे विविध भेदों में विभाजित किया जाता है। रस भी प्रकाश तथा अन्न के समान एक ही है। अपितु उसके अध्ययन तथा अध्यापन के लिए अर्थात् समझने और समझाने के लिए स्थायी भावों के आधार पर विविध भेदों में विभाजित किया जाता है।

✼ रसों की संख्या :

रसों की संख्या या भेदों को लेकर विद्वानों में एकमत नहीं है। रस संप्रदाय के प्रवर्तक भरतमुनि ने 'नाट्यशास्त्र' में श्रृंगार, रौद्र, वीर और बीभत्स केवल इन चार रसों का ही प्रमुख रूप से उल्लेख किया है। इन्हीं से क्रमश: हास्य, करूण, अद्‌भुत और भयानक रसों की उत्पत्ति मानी है। इस प्रकार भरतमुनि ने नाटक में केवल आठ रस माने हैं। काव्य के लिए प्रारंभ में रसों की संख्या नौ मानी गयी थी। श्रृंगार, वीर, करूण, हास्य, अद्‌भुत, भयानक, बीभत्स, रौद्र और शांत रस। आगे चलकर हिंदी साहित्य की भक्ति काव्यधारा के प्रवाह से सरसित होकर वात्सल्य और भक्ति रस के रूप में प्रतिष्ठित हुए। फिर भी प्रमुखतया शास्त्रीय विधि से मान्य नौ रस ही है। इन नौ रसों के विश्लेषन के साथ हम वात्सल्य और भक्ति रस का भी विवेचन स्थायी भाव के आधार पर करेंगे।

स्थायी भाव के आधार पर रसों का विवेचन इस प्रकार किया जाता है -

	स्थायी भाव	रस
1.	रति	श्रृंगार रस
2.	उत्साह	वीर रस
3.	हास	हास्य रस
4.	क्रोध	रौद्र रस
5.	भय	भयानक रस
6.	जुगुप्सा	बीभत्स रस
7.	शोक	करूण रस
8.	विस्मय	अद्‌भुत रस
9.	निर्वेद	शांत रस
10.	वत्सल	वात्सल्य रस
11.	भगवत् प्रेम	भक्ति रस

स्थायी भावों के आधार पर सर्वमान्य इन ग्यारह रसों का सोदाहरण विवेचन निम्न प्रकार से किया जाता है–

1. श्रृंगार रस :

'श्रृंगार' शब्द दो शब्दों से मिलकर बना है – 'श्रृंग' और 'आर'। 'श्रृंग' का अर्थ है काम और 'आर' का अर्थ होता है – वृद्‌धि, गति या प्राप्ति। अत: श्रृंगार का अर्थ हुआ – कामोद्रेक की प्राप्ति या वृद्‌धि। विभाव अनुभाव एवं संचारी भावों के संयोग से परिपक्व अवस्था में पहुँचा हुआ रति स्थायी भाव श्रृंगार रस में परिणत होता है।

श्रृंगार रस को अधिकांश आचार्यों ने 'रस – राजत्व' की उपाधि दी है। इसका प्रमुख कारण है – श्रृंगार भावना की व्यापकता। श्रृंगार का प्रभाव आश्रय पर तुरंत पडता है।

श्रृंगार रस के.....

देवता : विष्णु माने गए हैं।

वर्ण : वर्ण श्याम माना गया है।

स्थायी भाव : रति है।

आलंबन : नायक या नायिका आदि।

उद्दीपन : ऋतु - सौंदर्य, चांदनी रात, सरिता तट, उपवन, एकांत स्थान, वियोग में दु:खद बातें आदि हैं।

अनुभाव : देखना, मुस्कुराना, गुनगुनाना, सिमटना, आँखें झुकाना, ओठों का कंपित होना आदि अनुभाव हैं।

संचारी भाव : औत्सुक्य, हर्ष, लज्जा, जडता, ग्लानि, उन्माद आदि संचारी माने जाते हैं।

श्रृंगार रस के दो भेद होते हैं -

(क) संयोग श्रृंगार

(ख) वियोग श्रृंगार

संयोग श्रृंगार को संभोग श्रृंगार तथा वियोग श्रृंगार को विप्रलंब श्रृंगार भी कहा जाता है।

(क) संयोग (संभोग) श्रृंगार : संयोग श्रृंगार वहाँ होता है, जहाँ नायक और नायिका की मिलन अवस्था का वर्णन होता है। इसमें नायक-नायिका के परस्पर हास-विलास, आलिंगन, स्पर्श, चुंबन आदि का वर्णन होता है। खासकर परस्पर अवलोकन तथा संभाषण को अधिक पसंद किया जाता है। क्योंकि चुंबनादि तो नग्नता की परिभाषा में आ जाते हैं। इसमें नायक या नायिका तथा स्थिति एक-दूसरे के भाव के आलंबन हो सकते हैं। उद्दीपन विभाव बाह्य और आंतरिक दोनों प्रकार के होते हैं।

संयोग श्रृंगार के.....

आश्रय : नायक या नायिका कोई भी हो सकते हैं।

आलंबन : आश्रय की तरह आलंबन भी नायक या नायिका में से कोई भी हो सकता है।

उद्दीपन :

बाह्य विभाव के अंतर्गत - चाँदनी रात, उपवन, सरिता, तट, एकांत स्थान, वसंत, वर्षा आदि ऋतुएँ, सुगंधित पदार्थ आदि आते हैं।

आंतरिक विभाव के अंतर्गत - आंतरिक उद्दीपन विभाव के अंतर्गत आलंबन की शारीरिक बनावट, प्रेम से देखना, मुस्कराना, गुनगुनाना आदि बातें आती हैं।

संचारी भाव : इसके संचारी भावों के अंतर्गत हर्ष, लज्जा, औस्तुक्य आदि आते हैं।

उदा. : 1.

''हाथ लक्ष्मण ने तुरंत बढा दिए
और बोले एक परिरंभन प्रिये।
सिमट - सी सहसा गयी प्रिय की प्रिया
एक तीक्ष्ण अपांग ही उसने दिया।''

प्रस्तुत उदाहरण में :

आश्रय : लक्ष्मण है।

आलंबन : उर्मिला है।

उद्दीपन : एकांत स्थान, उर्मिला का कटाक्ष आदि।

अनुभाव : सिमटना।

संचारी भाव : लज्जा, हर्ष आदि।

उदा. : 2.

> ''ये रेशमी जुल्फे ये शरबती आँखें,
> इन्हें देखकर जी रहे हैं सभी।
> जो ये आँखें शरम से झुक जाएगी,
> सारी बातें यही बस रूक जाएगी,
> चुप रहना ये अफसाना,
> कोई इनको ना बतलाना।''

(ख) वियोग (विप्रलंब) श्रृंगार : वियोग श्रृंगार वहाँ होता है, जहाँ नायक और नायिका में परस्पर उत्कट प्रेम होने पर भी उनका मिलन नहीं हो पाता है। इसमें रति स्थायी भाव स्वप्न, चित्र, श्रवण आदि के द्वारा व्यक्त होता है। यह संयोग न होने से और भी तीव्र होता है। मिलन के बाद फिर बिछोह के अवसर पर मान, प्रवास आदि विभिन्न दशाओं में प्रकट होता है, वहाँ भी वियोग श्रृंगार होता है। आचार्यों ने वियोग श्रृंगार की दस दशाएँ मानी हैं।

1. अभिलाषा	2. चिंता	3. स्मरण	4. गुणकथन	5. उद्वेग
6. उन्माद	7. प्रलाप	8. व्याधि	9. जडता	10. मरण।

वियोग श्रृंगार के......

आश्रय : नायक या नायिका दोनों में से कोई एक या दोनों हो सकते हैं।

आलंबन : संयोग श्रृंगार की तरह इसके आलंबन भी यथास्थिति नायक या नायिका हो सकते हैं।

उद्दीपन : उद्दीपन के अंतर्गत दु:खद बातें आ जाती हैं।

अनुभाव : अश्रु बहाना, प्रलय, स्तंभ आदि अनुभाव के अंतर्गत आते हैं।

संचारी भाव : संचारी भावों के अंतर्गत जडता, ग्लानि, उन्माद आदि हैं।

उदा. : 1.

> ''हा। गुण खानी जानकी सीता। रूप सील व्रत नेम पुनीता

लछिमन समुझाये बहु भाँति। पूछत चले लता तरू पाँती
हे खग मृग हे मधुकर सेनी। तुम देखी सीता मृग-नैनी।''

प्रस्तुत उदाहरण में :

आश्रय : आश्रय राम है (सीता के रावण द्‌वारा हरण के पश्चात् राम की अवस्था का चित्रण)

आलंबन : आलंबन सीता है।

उद्‌दीपन : उद्‌दीपन शून्य है।

अनुभाव : सीता का गुण-कथन, सीता के लिए विलाप, पशु-पंछी, पेडों से सीता का पता पूछना आदि।

संचारी तथा व्याभिचारी : उन्माद, आवेग, चिंता, व्याधि आदि।

उदा. : 2.

''याद तेरी आयेगी,
मुझको बडा सतायेगी,
जिद ये झूठी तेरी, मेरी जान ले के जाएगी।
तेरा साथ छुटा, टूटा दिल तो ये जाना,
कितना है मुश्किल, दिल से यार को भुलाना,
दिल का हमेशा से है, दुश्मन जमाना,
गम ये है, तूने मुझे ना पहचाना।''

2. वीर रस :

सहृदय सामाजिकों के हृदय में वासना रूप में विद्यमान उत्साह स्थायी भाव काव्यादी में वर्णित विभाव अनुभाव और संचारी भावों के संयोग से उद्‌बुद्‌ध होकर रसावस्था में पहुँच कर आस्वाद योग्य बन जाता है, तब वह वीर रस कहलाता है।

वीर रस का....

स्थायी भाव : उत्साह है।

देवता : इंद्र है।

वर्ण : स्वर्ण के समान माना गया है।

आलंबन : नायक, शत्रु, याचक ङ्ग दीन, तीर्थ-स्थान, ऐश्वर्य, साहसिक कार्य, यश आदि हैं।

उद्‌दीपन : शत्रु का प्रभाव, शक्ति, अहंकार, याचक या दीन की दशा, उनके द्‌वारा की गई प्रशंसा, चेष्टा, प्रदर्शन, ललकार आदि हैं।

अनुभाव : रोमांच, आँखों का लाल होना, शत्रुओं के अंगों का संचलन सैन्य का संगठन आदि हैं।

संचारी भाव : गर्व, उग्रता, धैर्य, तर्क, असूया, दया, आवेग, चपलता, हर्ष, क्षमा आदि है।

वीर रस के चार भेद माने गए हैं....

1. युद्धवीर 2. दयावीर 3. धर्मवीर 4. दानवीर

उदा. : 1.

''कायर तुम दोनों ने ही उत्पात मचाया
अरे समझकर जिनकों अपना था अपनाया
तो फिर आओ देखो कैसे होती है बलि
रण गह यज्ञ पुरोहित ओ किलात ओ आकुली।''

प्रस्तुत उदाहरण में .....

आश्रय : मनु है।

आलंबन : किलात तथा अकुली है।

उद्दीपन : किलात तथा अकुली द्वारा उत्पात मचाना।

अनुभाव : मनु का ललकारना, युद्ध करना।

संचारी भाव : गर्व, आवेग, चपलता आदि।

उदा. : 2.

''यह चूके हैं सितम हम बहुत गैरों के,
अब करेंगे हर एक वार का सामना,
झूक सकेगा ना अब सरफरोशों का सर,
चाहे हो खूनी तलवार का सामना,
सर पे बांधे कफन हम तो हँसते हुए,
मौत को भी गले से लगा जाएँगे।

3. हास्य रस :

रूप, आकार, वाणी, वेश और कार्य आदि के विकृत हो जाने से हास्य की उत्पत्ति होती है।

हास्य रस का स्थायी भाव : हास है।

इसके देवता : प्रथम शंकर के गण माने जाते हैं।

इस रस का वर्ण : स्वेत है।

आश्रय : हास्य रस का आश्रय व्यक्ति विशेष न होकर प्राय: श्रोता, पाठक, दर्शक सभी हो जाते हैं।

आलंबन : विकृत रूप, आकार, वेशभूषा, विचित्र अनर्गल वचन, विलक्षण चेष्टाएँ, व्यंग्य, मूर्खता के कार्य, निर्लज्जता आदि।

उद्दीपन : हास्यजनक वस्तु या व्यक्ति की चेष्टाएँ, विचित्र अंग भंगिमा, क्रिया कलाप आदि।

अनुभाव : आँखें और मुख का विकसित होना, खिलखिलाना, व्यंग्य वाक्य कहना, ओठ, नासिका और कपोल का स्फुरित होना, नेत्र बंद होना, मुख पर प्रसन्नताजनक दीप्ति आदि।

संचारी भाव : रोमांच, कंप, हर्ष, स्वेद, चंचलता, आलस्य, निद्रा, चलपता, गर्व आदि।

भावों के आधार पर हास्य के छ: भेद माने गए हैं......

1. स्मित	2. हसित	3. विहसित
4. अवहासित	5. अपहसित	6. अतिहसित

उदा. : 1.

''मगर एक 'इंटर' में देखा तो एक,
चढा कोई साहब का रचा करके भेख।
बदन पर थी 'पॉलिश' वे जापान की,
औ पतलुन 'गुधडी' के बाजार की।
शक्ल और सूरत की क्या बात थी,
उसे देख भैस की माँ मात थी।''

प्रस्तुत उदाहरण में :

आश्रय : दर्शक तथा पाठक है।

आलंबन : विचित्र पोशाख पहना हुआ आदमी।

उद्दीपन : बदन पर जापान की पॉलिश, गुधडी की पतलुन, भैस से भी बद्तर शक्ल-सूरत।

अनुभाव : खिलखिलाना, हाथ दिखाना, आँखों से पानी आना, आँखों का फैल जाना, कपोल आरक्त होना आदि।

संचारी भाव : चपलता, चंचलता, कंपन, आवेग, हर्ष आदि।

उदा. : 2.

''एक दिन दादाजी को
याद आयी अपनी जवानी

दादी से बोले ए मेरे दिलबर जानी
कल हम पुराने दिनों की तरह जियेंगे
गुलाब लेकर तुम्हारा नदिया के किनारे इंतजार करेंगे
अगले दिन दादाजी ने शाम तक किया इंतजार
पर ना आयी जश्न-ए-बहार
दादाजी झल्लाएँ
तुम कैसी प्रेमिका हो आयी नहीं
दिन भर इंतजार करके
मेरे घुटने का बज गया बाजा
दादीजी शरमाकर बोली
क्या करूँ, माँ ने आने नहीं दिया मेरे राजा।''

4. रौद्र रस :

शत्रु की अपमानजनित चेष्टाओं से तथा गुरू-निंदा, देश-धर्म का अपकार और अपमान होने पर सामाजिक में वासना रूप में क्रोध स्थायी भाव जाग्रत होता है। विभावानुभाव तथा संचारी भावों के उद्दीपन से रौद्र रस का उदय होता है।

देवता : रूद्र माने जाते हैं।

वर्ण : रक्त के समान माना जाता है।

स्थायी भाव : क्रोध है।

आलंबन : शत्रु, अनुचित बात कहनेवाला, अपराधी, देशद्रोही, समाज द्रोही, दुराचारी व्यक्ति आदि।

उद्दीपन : अपमान और निंदा से भरे वचन, विरोधी दल द्वारा किए अनुचित कार्य, आँखें दिखाना, चिढाना आदि।

अनुभाव : गर्व आवेग, चपलता, अमर्ष, कंप, उग्रता आदि।

उदा. : 1.

''सुनता लखन के वचन कठोरा। परशु सुधारि धेरउ कर धारा।
अब जनि देउ दोष मोहि लोगू। कटुवादी बालक वध जोगू।
राम वचन सुनि कघुक जुडाने। कहि कघु लखन बहुरि मुस्काने।
हँसत देख नख-शिख रिस व्यापी। राम तोर भ्राता बड पापी।''

प्रस्तुत उदाहरण में :

आश्रय : परशुराम है।

आलंबन : लक्ष्मण है।

उद्दीपन : लक्ष्मण के कठोर वचन तथा मुस्कुराना।

अनुभाव : परशु हाथ में लेना, लक्ष्मण को पापी कहना, वध करने की बात कहना।

संचारी भाव : व्यग्रता, चपलता, आवेग आदि।

उदा. : 2.

''साक्षी रहे संसार, करता हूँ प्रतिज्ञा पार्थ मैं।
पूरा करूंगा कार्य सब, कथनानुसार यथार्थ मैं।
जो एक बालक को कपट से मार हँसते हैं अभी।
वे शत्रु सत्वर शोक-सागर मग्न दिखेंगे सभी।''

5. भयानक रस :

भयानक, अनिष्ठकारी दृष्य देखने, सुनने या स्मरण करने से सामाजिक में वासना रूप में स्थित 'भय' स्थायी भाव आलंबन, उद्दीपन के कारण उद्बुद्ध होकर संचारी भावों की मदद से तीव्र होता है। सामाजिक रसासक्त होकर 'भयानक रस' की परिणति होती है।

इस रस के.....

देवता : भूत-पिशाच तथा कालदेव माने जाते हैं।

रंग : भयानक रस का वर्ण कृष्ण माना गया है।

स्थायी भाव : भय है।

आलंबन : भयानक व्यक्ति या वस्तु, सिंह, व्याघ्र, हिंसक जंतु, सर्प, आग, नदी की बाढ, भूत, प्रेत की आशंका, एकांत भयानक स्थान, श्मशान, निर्जन स्थान आदि।

उद्दीपन : आलंबन की भयानक चेष्टाएँ और व्यवहार, निर्जनता, उग्र ध्वनि, सिंह की दहाड, व्याघ्र की गर्जना, अकेलापन, सर्प का रेंगना या जीभ निकालना, सागर की उँची लहरें, नदी का तीव्र बहाव, आग से निकलेनवाली लपटे, अनिष्ठ की आशंका आदि हैं।

अनुभाव : काँपना, पसीना आ जाना, रोमांचित हो जाना, आँखें और स्वर का विकृत हो जाना, मुख-मंडल का रंग उड जाना, भागने का उपक्रम करना, मूर्छित हो जाना, गिडगिडाना, चिल्लाना आदि।

संचारी भाव : शंका, मोह, दैन्य, आवेग, चिंता, त्रास, चपलता, मरण, जुगुप्सा आदि इसके स्थायी भाव को पुष्ट करते हैं।

उदा. : 1.

''एक ओर अजगरहि लखि, एक ओर मृगराइ।
विकल बटोही बीच ही, परयौ मूर्च्छा खाई।।''

प्रस्तुत उदाहरण में :

आश्रय : बटोही (प्रवासी) है।

आलंबन : अजगर और शेर है।

स्थायी भाव : भय है।

उद्दीपन : अजगर का जिव्हा निकालना, शेर का दहाडना (काव्य में नहीं है) आदि हैं।

अनुभाव : बटोही का मूर्च्छित होना।

संचारी भाव : कंपन, चिंता, दैन्य, आवेग, त्रास आदि।

उदा. : 2.

''झहरात भहरात दावानल आयौ।
घेरि बहुँ ओर करि सोर अन्दोर
उद्यान धरनि आकास चहुँ पास छावै।''

6. बीभत्स रस :

घृणित वस्तुओं को देखकर अथवा उनका वर्णन सुनकर सामाजिकों में वासनागत रूप में विद्यमान 'जुगुप्सा' स्थायी भाव उद्भुत होता है, जो संबंधित विभावानुभावों के संयोग से परिपक्व आवस्था में पहुँचकर तथा संचारी भावों के संचरण से पुष्ट होकर 'बीभत्स रस' में परिणत हो जाता है।

बीभत्स रस के....

देवता : महाकाल माने जाते हैं।

वर्ण : नीला है।

स्थायी भाव : जुगुप्सा है।

आलंबन : घृणोत्पादक प्राणी या पदार्थ, रक्त, मांस, श्मशान, मैली-कुचैली दुर्गंधयुक्त वेशभूषा, सडी- गली तथा दुर्गंधयुक्त वस्तुएँ आदि आलंबन हैं (स्थान : मछली बाजार, कसाई खाना, श्मशान घाट आदि)

उद्दीपन : घृणोत्पादक वस्तुओं में कीडे पडना, किडों का कुलबुलाना, मक्खियों का भिनभिनाना, सडते मांस-पिंडों को गिद्ध, कौओं, कुत्तों आदि द्वारा नोचना-खसोटना, घृणोत्पादक वस्तुओं की चर्चा आदि।

अनुभाव : मुँह फेरना, नाक सिकोडना, थूँकना, छी-छी करना आदि अनुभाव हैं।

संचारी भाव : निर्वेद, ग्लानि, आवेग, जडता, चिंता, व्याधि, अपस्मार आदि संचारी कहलाते हैं।

उदा. : 1.

> ''सिर पै बैठ्यो काग आँख दोउ खात निकारत,
> खींचत जीभहि सियार अतिहि आनन्द उरधारत।
> गिद्ध जांघ को खोदि खोदि कै मांस उपारत,
> श्वान अंगुरिन काटि-काटि कै खात विदारत।
> बहु चील नोचि लै जात तुच मोद भरयो सबको हियो,
> मनु ब्रह्म भोज जिजमान कोउ आज भिखारिन दियो।''

प्रस्तुत उदाहरण में :

आश्रय : राजा हरिश्चंद्र, श्रोता या पाठक हैं।

आलंबन : श्मशान का दृष्य, मरे हुए जानवर को जानवरों या पंछियों द्‌वारा नोच-नोचकर खाने का दृष्य।

स्थायी भाव : जुगुप्सा है।

उद्‌दीपन : काक, गिद्‌ध, चील आदि पंछियों तथा कुत्ते और सियार द्‌वारा मांस नोचना, उखाडना, खाना आदि।

अनुभाव : मितलाना, थूँकना, नाक सिकोडना आदि।

संचारी भाव : मोह, स्मृति, ग्लानी आदि संचारी भाव हैं।

उदा. : 2.

> ''कई कब्रों उठ बैठी हैं लाशें
> भभकती गंध ये आई वो आई
> भटकते श्वान आवारा कई जो
> जुबां भुस-काटने को लपलपाई।''

7. करूण रस :

करूण रस अत्यंत प्रभावशाली है। इसमें सभी को द्रवित करने की क्षमता होती है। भवभूति ने इसे एकमात्र रस माना है। किसी आत्मीय तथा प्रिय व्यक्ति के साथ कुछ बुरा घटित होने पर या उसकी मृत्यु होने पर सामाजिको में वासना रूप में विद्‌यमान शोक स्थायी भाव विभाव तथा अनुभाव के संयोग से उद्‌दीप्त होकर संचारी भावों के योग से पुष्ट होता है और करूण रस की परिणति होती है।

करुण रस के.....

देवता : यमराज माने जाते हैं।

वर्ण : कपोत के समान माना जाता है।

स्थायी भाव : शोक है।

आलंबन : प्रिय व्यक्ति, प्राणी या वस्तु का अनिष्ठ, हानि या विनाश, वियोग आदि।

उद्दीपन : प्रिय का वियोग, उसके गुण का कथन तथा स्मरण, प्रियजन का शव दर्शन, चित्र का दर्शन, प्रिय के गुणों का श्रवण आदि उद्दीपन हैं।

अनुभाव : रूदन, उच्छवास, प्रलाप, भूमि पतन, मूर्च्छा, कंप, दैव निंदा, शरीर का शिथिल होना, छाती पीटना आदि अनुभाव हैं।

संचारी भाव : निर्वेद, ग्लानि, मोह, स्मृति, चिंता, विषाद, अन्माद, दैन्य, व्याध, मरण आदि संचारी हैं।

उदा. : 1.

''पेट पीठ दोनों मिलकर हैं एक

चल रहा लकुटिया टेक

मुट्ठी भर दाने को... भूख मिटाने को

मुह फटी पुरानी झोली को फैलाए...

दो टूक कलेजे के करता पछताता पथ पर आता।''

प्रस्तुत उदाहरण में :

आश्रय : पाठक, श्रोता तथा दर्शक है ।

आलंबन : दैन्य आवस्था में भीख माँगता भिखारी है।

उद्दीपन : भूख के कारण पीठ से चीपका हुआ पेट, फटी-पुरानी झोली, भिखारी का करूण चेहरा, उसकी करुणिक पुकार आदि उद्दीपन हैं।

अनुभाव : उच्छवास, दैव निंदा, दया, कंप आदि अनुभाव पाए जाते हैं।

संचारी भाव : निर्वेद, ग्लानि, दैन्य, चिंता, व्याधि, विषाद आदि संचारी भाव परिलक्षित होते हैं।

उदा. : 2.

''साथ दो बच्चे भी हैं सदा हाथ फैलाए
बायें से वे मलते हुए पेट को चलते
और दाहिना दया दृष्टि पाने की ओर बढाये

भूख से सूख ओठ जब जाते
दाता भाग्य विधाता से क्या पाते?
घूँट आँसुगों के पीकर रह जाते।''

8. अद्‌भुत रस :

वस्तु-वैचित्र्य को देखकर सामाजिकों में वासना रूप में स्थित विस्मय स्थायी भाव उत्पन्न होता है। विभाव और आनुभाव के संयोग से तथा संचारी भावों से पुष्टि पाकर आश्चर्य के संसार से अद्‌भुत रस का उदय होता है। आश्चर्यजनक व्यक्तियों, वस्तुओं, विचित्र दृश्यों एवं अलौकिक वस्तु या घटना के द्‌वारा अद्‌भुत रस की उत्पत्ति होती है।

इस रस के....

देवता : गंधर्व माने जाते हैं।

वर्ण : अद्‌भुत रस का वर्ण पीत है।

स्थायी भाव : विस्मय है।

आलंबन : अलौकिक व्यक्ति, वस्तु या घटना, विचित्र दृश्य, आकस्मिक मनोरथ सिद्‌धि आदि आलंबन माने गए हैं।

उद्‌दीपन : अलौकिक के गुणों का श्रवण, अलौकिक के विभिन्न रूप, आश्चर्यजनक वस्तु का विवेचन आदि इसके उद्‌दीपन के अंतर्गत आते हैं।

अनुभाव : रोमांच, स्तब्ध होना, अवाक् हो जाना, स्तंभ, स्वेद, दाँतों तले अंगुली दबाना, नेत्र विस्फारण आदि अनुभाव माने जाते हैं।

संचारी भाव : भ्रम, हर्ष, औत्सुक्य, चंचलता, प्रलाप, वितर्क, आवेग, स्मृति, संभ्रम आदि संचारी भाव माने जाते हैं।

उदा. : 1.

''अंबर तो अंबार अमर कियो बंसीधर।
भिष्म, करण, द्रोण शोभार्य निहारी है।
सारी मध्य नारी है कि नारी मध्य सारी है।
कि सारी ही की नारी है कि नारी ही की सारी है।''

प्रस्तुत उदाहरण में :

आश्रय : भिष्म, करण, द्रोण तथा अन्य दरबारी हैं।

आलंबन : सारियों के अंबार आलंबन प्रतीत होता है।

उद्दीपन : निरंतर बढते सारियों के अंबार।

अनुभाव : शोभा निहारना, भ्रमित होना, आश्चर्य चकित होना, विस्मित होना आदि।

संचारी भाव : भ्रम, हर्ष, औत्सुक्य, चंचलता, आवेग, भ्रम आदि संचारी भाव परिलक्षित होते हैं।

उदा. : 2.

''क्षण मार दिया कर कोडे से
रण किया उतरकर घोडे से।
राणा रण-कौशल दिखा दिया
चढ गया उतरकर घोडे से।''

9. शांत रस :

ये रस उदात्त वृत्तियों का प्रेरक है। श्रृंगार, वीर और शांत रसों में से महाकाव्य में प्रधान या अंगी रस के रूप में प्रतिष्ठित होना आवश्यक होता है। अत: श्रृंगार, वीर रसों के साथ ही शांत रस की गणना भी प्रधान रसों में की जाती है। संसार की असारता और क्षणभंगुरता के वशिभूत सामाजिक में स्थित वासना रूप में विद्यमान निर्वेद स्थायी भाव विभावानुभाव के संयोग से उद्यपित होता है और संचारी भावों की मदद से पुष्ट होकर शांत रस में परिणत होता है।

इस रस के.....

देवता : विष्णु माने जाते हैं।

वर्ण : कुंदन पुष्प व चंद्रमा के समान शुक्ल माना जाता है।

स्थायी भाव : निर्वेद है।

आलंबन : संसार की असारता और क्षणभंगुरता, ज्ञात संसार का परम चिंतन आदि है।

उद्दीपन : सत्संग, तीर्थस्थान, मृतक, साधु-संतों के आश्रम, सिद्ध महात्माओं का दर्शन एवं सत्संग शास्त्र परिशीलन आदि।

अनुभाव : रोमांच, अश्रु, पश्चात्ताप, ग्लानि, संन्यास ग्रहण, गृहत्याग, संसार की असारता का बखान आदि।

संचारी भाव : निर्वेद, हर्ष, स्मरण, बोध, मति, धृति आदि संचारी भाव हैं।

उदा. : 1.

''जीव जहाँ खत्म हो जाता
उठते - गिरते
जीवन - पथ पर

चलते - चलते
पथिक पहुँचकर
इसी जीवन के चौराहे पर
क्षणभर रूककर
सूनी दृष्टि डाल सम्मुख जब पीछे
अपने नयन घुमाता
जीवन वहाँ खत्म हो जाता।''

प्रस्तुत उदाहरण में......

आश्रय : कवि का ह्रदय है।

आलंबन : पथिक का जीवन है।

उद्दीपन : जीवन पथ, चौराहा, सूनी दृष्टि आदि उद्दीपन हैं।

अनुभाव : चलते - चलते रूकना, पीछे मुड-मुडकर देखना अनुभाव हैं ।

संचारी भाव : जीवन की क्षणभंगुरता का ज्ञान, दृष्टि में सूनापन, मृत्यु बोध आदि संचारी भाव हैं।

उदा. : 2.

''भाग रहा हू भार देख,
तू मेरी ओर निहार देख,
मैं त्याग चला निस्सार देख,
अटकेगा मेरा कौन काम,
ओ क्षणभंगुर भव राम राम।''

10. वात्सल्य रस :

संस्कृत के अधिकांश आचार्यों ने इसे अलग रस न मानकर श्रृंगार के भीतर ही परिगणित किया है। लेकिन भोज, भानुदत्त, विश्वनाथ इसे स्वतंत्र रस मानते हैं। ''बालक या पशु पंछियों के बच्चों का उछलना, कुदना देखकर बुजुर्ग तथा बडे सामाजिकों में वासनागत् वत्सल स्थायी भाव विभाव, अनुभाव के संयोग से तथा संचारी भावों के पुष्ट होने से वात्सल्य रस उद्बुद्ध होता है।'' बच्चों की तुतली बोली, घर के आँगन में उनके द्वारा भरी किलकारियाँ, अबोधजन्य कार्य वात्सल्य रस के उत्पादक कारण हैं। इस रस को नौ रसों में स्थान न होने के कारण इसके कोई देवता या वर्ण विद्वानों ने निश्चित नहीं किया हैं।

इस रस का....

स्थायी भाव : वत्सल है।

आलंबन : बालक या शिशु, पालतु पशु-पंछियों के छोटे बच्चे हैं।

उद्दीपन : बच्चे की भोली-भाली चेष्टाएँ, तुतली बोली, अबोध जिज्ञासाएँ, घुटनों के बल चलना, रेंगना, हठ करना, किलकारियाँ भरना, खेलना, कूदना, गिर पडना आदि।

अनुभाव : आलिंगन, अंग स्पर्श, सिर चूमना, निहारना, हँसना, पुलकित होना, झुलाना आदि।

संचारी भाव : हर्ष, औत्सुक्य, मति, विषाद, चिंता, जडता, शंका, मोह आदि।

उदा. : 1.

''जसोदा हरि पालने झुलावे।
हालरावै दुलराइ मल्हावै जोइ सोई कछु गावै।।
मेरे लाल की आउ निंदरिया काहे न आति सुलावै।
तू काहे न बेगी सो आवै ताको कान्ह बुलावै।।''

प्रस्तुत उदाहरण में .....

आश्रय : यशोदा है।

आलंबन : कृष्ण का बाल रूप है।

उद्दीपन : बाल कृष्ण की क्रियाएँ आदि हैं।

अनुभाव : यशोदा का हिलना, मल्हाना, गाना आदि है।

संचारी भाव : शंका, हर्ष, चंचलता, चपलता आदि है।

उदा. : 2.

''चलत देखि जसुमति सुख पावै।
ठुमकी-ठुमकी पग धरनि रेंगत, जननी देखि दिखावै।
देहरि लौ चलि जात, बहुरि फिरि-फिरि इतहिं कौ आवै।
गिरि-गिरि परत, बनत नहिं लाँघत सुर-मुनि सोच करावै।

11. भक्ति रस :

पंडित जगन्नाथ ने भक्ति रस को स्वतंत्र रस माना है। भक्ति का स्थायी भाव देवादिविषयक रति है। भक्त के हृदय में स्थित तन्मयता रसोत्कर्ष के लिए अपेक्षित होती है। वात्सल्य रस की तरह इस रस का अंतर्भाव भी नौ रसों में नहीं किया जाता। अत: इसके भी देवता और वर्ण निश्चित नहीं किये हैं।

इस रस का.....

स्थायी भाव : देवरति या भगवत् प्रेम है।

आलंबन : ईश्वर या उसका कोई रूप आदि हैं।

उद्दीपन : पुराणादि का श्रवण है।

अनुभाव : रोमांच, अनन्यासक्तिजनित अश्रु आदि हैं।

संचारी भाव : हर्ष, दैन्य आदि हैं।

उदा. : 1.

"तू दयालू दीन हौं तू दानी हौं भिखारी।
हौ प्रसिद्ध पातकी तू पाप पुंज हारी।।
नाथ तू अनाथ को अनाथ कौन मोसो।
मों समानआरत नहिं आरति हर तोसो।।"

प्रस्तुत उदाहरण में..........

आश्रय : ईश्वर के प्रति अनुराग है।

आलंबन : राम या ईश्वर है।

उद्दीपन : ईश्वर की दानशीलता, दयालुता, करूणा आदि हैं।

अनुभाव : गुण कथन, विनय आदि हैं।

संचारी भाव : दैन्य, हर्ष, गर्व आदि हैं।

उदा. : 2.

"बसौ मोरे नैनन में नंदलाल।
मोहिनी मूरति साँवरी सूरति नैना बने बिसाल।
अधर सुधारस मुरली राजति उर बैजंती माल।
छुद्रघंटिका कटि तट सोभित नूपुर शब्द रसाल।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर भक्तवत्सल गोपाल ।"

3.4 स्वयं अध्ययन के लिए प्रश्न :

1. श्रृंगार रस को .... की उपाधि दी गयी है।

   1. रस राज 2. रस शिरोमणी 3. उत्कृष्ट रस 4. दीव्य रस

2. भरतमुनि ने अपने 'रस-सूत्र' में .... रसांगों की गणना की है।

   1. चार 2. तीन 3. दोन 4. पाँच

3. रस शब्द का प्रयोग .... तत्त्व के रूप में माना जाता है।

   1. गौण तत्त्व 2. न्यून तत्त्व 3. सर्वोत्कृष्ठ तत्त्व 4. प्राण तत्त्व

4. रस सिद्धांत के प्रवर्तक .... माने जाते हैं।

1. आचार्य दंडी 2. आचार्य वामन 3. भवभूति 4. आचार्य भरतमुनि

5. भरतमुनि ने अपने 'रस-सूत्र' में रस के चार अंगों में से .... अंग का उल्लेख नहीं किया।

1. विभाव 2. अनुभाव 3. व्याभिचारी भाव 4. स्थायी भाव

6. विद्वानों ने स्थायी भावों की संख्या .... मानी हैं।

1. चार 2. पाँच 3. आठ 4. नौ

7. बीभत्स रस का स्थायी भाव .... है।

1. निर्वेद 2. जुगुप्सा 3. शोक 4. वत्सल

8. भरतमुनि के अनुसार 'विभाव' शब्द का अर्थ .... है।

1. भाव रहित 2. उत्तेजक 3. विज्ञान 4. शास्त्र

9. विद्वानों ने अनुभाव के .... भेद माने हैं।

1. चार 2. पाँच 3. तीन 4. सात

10. संचारी भावों को भरतमुनि ने .... नाम से अभिहित किया है।

1. अलौकिक भाव 2. सहज भाव 3. व्यभिचारी भाव 4. अनुभाव

11. संचारी भावों की संख्या .... मानी जाती हैं।

1. तेईस 2. तेरा 3. तैंतीस 4. तैंतालीस

12. श्रृंगार रस का स्थायी भाव .... है।

1. उत्साह 2. हास 3. भय 4. रति

13. वीर रस के देवता .... माने जाते हैं।

1. इंद्र 2. शिव 3. राम 4. कृष्ण

14. हास्य रस का वर्ण .... माना जाता है।

1. श्याम 2. भूरा 3. स्वेत 4. नीला

15. गुरू-निंदा सुनने पर .... रस का उदय होता है।

1. वीर 2. करूण 3. भयानक 4. रौद्र

16. भवभूति ने .... रस को एकमात्र रस माना है।

1. श्रृंगार 2. वीर 3. करूण 4. शांत

17. वात्सल्य रस का स्थायी भाव .... है।

1. रति 2. वत्सल 3. उत्साह 4. हास्य

18. भक्ति रस का स्थायी भाव .... है।

1. भगवत् प्रेम 2. रति 3. जुगुप्सा 4. निर्वेद

19. शांत रस का स्थायी भाव .... है।

1. वत्सल 2. हास 3. निर्वेद 4. उत्साह

20. विस्मय .... रस का स्थायी भाव है।

1. रौद्र 2. करूण 3. अद्‌भुत 4. श्रृंगार

लघुत्तरी प्रश्न :

1. वीर रस का सोदाहरण विवेचन कीजिए।
2. श्रृंगार रस के लक्षणों को सोदाहरण स्पष्ट कीजिए।
3. बीभत्स रस का सोदाहरण विवेचन कीजिए।
4. शांत रस का सोदाहरण विवेचन कीजिए।
5. 'विभाव' का स्वरूप स्पष्ट कीजिए।

दीर्घोत्तरी प्रश्न :

1. रस के अंगों का सामान्य परिचय दीजिए।
2. रस के भेदों का विवेचन कीजिए।
3. श्रृंगार रस का सोदाहरण विवेचन कीजिए।
4. वात्सल्य रस और भक्ति रस का सोदाहरण विवेचन कीजिए।
5. वीर रस और रौद्र रस का सोदाहरण विवेचन कीजिए।

3.5 पारिभाषिक शब्दावली :

1. **चिन्मय –** चेतना रूप।
2. **अभिव्यक्त करना –** प्रकट करना।
3. **सानुराग अवलोकन –** प्रेमपूर्वक देखना।

4. **परिगणित करना –** गिनना, समाविष्ट करना।

5. **सहृदय सामाजिक –** पाठक, वाचक, श्रोता या दर्शक।

6. **निष्पन्न होना –** अभिव्यक्त होना, परिणत होना।

7. **विभावन करना –** उद्‌बोधित करना, आस्वाद योग्य बनाना।

8. **आलंबन विभाव –** स्थायी भाव के प्रकट होने का मुख्य कारण।

9. **उद्‌दीपन विभाव –** भावों को उद्‌दीप्त या उत्तेजित करने वाले कारण।

10. **विवेचन –** स्पष्टीकरण।

11. **पुष्प वाटिका –** फूलों का बगीचा।

3.6 स्वयंअध्ययन प्रश्नों के उत्तर :

1. (1)	2. (2)	3. (3)	4. (4)	5. (4)
6. (4)	7. (2)	8. (3)	9. (1)	10. (3)
11. (3)	12. (4)	13. (1)	14. (3)	15. (4)
16. (3)	17. (2)	18. (1)	19. (3)	20. (3)

3.7 सारांश :

1. भरतमुनि ने रस तथा रस के स्वरूप पर सर्वप्रथम विचार किया। अपने 'नाट्यशास्त्र' ग्रंथ में उन्होंने न केवल रस का परिचय दिया, अपितु रस को परिभाषित कर रस के अंगों का भी परिचय दिया है। आचार्य भरतमुनि के पश्चात् आचार्य अभिनव गुप्त, आचार्य विश्वनाथ, आचार्य मम्मट, आचार्य रामचंद्र शुक्ल, डॉ. दशरथ ओझा तथा डॉ. भगीरथ मिश्र आदि परवर्ती आचार्यों ने रस को परिभाषित करने का प्रयास किया।

2. भरतमुनि ने अपने 'रस-सूत्र' में विभाव, अनुभाव व व्याभिचारी या संचारी भावों का ही उल्लेख किया है। उन्होंने स्थायी भाव को अपने 'रस-सूत्र' में स्थान नहीं दिया है। अत: स्थायी भाव को जोडकर रस के चार अंग माने जाते हैं।

3. रस की संख्या को लेकर विद्‌वानों में मतभेद हैं। सामाजिक में वासनागत रूप में नौ स्थायी भाव माने जाते हैं। अत: इसी के आधार पर रसों की संख्या भी नौ ही मानी जाती हैं। भरतमुनि ने शांत रस छोडकर शेष आठ रसों को मान्यता दी है। तो उद्‌भट ने उनमें शांत रस को जोडकर रसों की संख्या नौ बना दी है। आचार्य विश्वनाथ ने इसमें और एक रस 'वात्सल्य' का समावेश किया, तो भक्ति के प्रभाव के कारण 'भक्तिरस' भी इन रसों में समाविष्ठ किया गया। अत: रसों की कुल संख्या ग्यारह मानी गयी। रसों के ये भेद सर्वसम्मत हैं।

3.8 क्षेत्रीय कार्य :

1. निराला की कविताओं में प्रयुक्त रसों को पहचानिए।
2. पुराने हिंदी फिल्मी गीतों में रसों की खोज कीजिए।
3. सूर तथा तुलसी के काव्य में वात्सल्य तथा भक्तिरस का आस्वादन कीजिए।
4. कुरुक्षेत्र तथा साकेत महाकाव्य में वीर रस तथा श्रृंगार रस की खोज कीजिए।

3.9 अतिरिक्त अध्ययन के लिए :

1. पाश्चात्य साहित्य सिद्धांत और विविध वाद : डॉ. ज्ञा. का. गायकवाड
2. काव्यशास्त्र : डॉ. भगीरथ मिश्र
3. काव्यशास्त्र : शंभुनाथ पांडेय
4. भारतीय काव्यशास्त्र की परंपरा : नगेंद्र
5. भारतीय काव्यशास्त्र के प्रतिमान : जगदीश प्रसाद कौशिक
6. भारतीय काव्यशास्त्र के सिद्धांत : कृष्णदेव धारी
7. भारतीय एवं पाश्चात्त्य काव्य सिद्धांत : गणपति चंद्र गुप्त

❑❑❑

इकाई -4

अलंकार (शब्दालंकार, अर्थालंकार)

अनुक्रम

4.1 उद्देश्य

4.2 प्रस्तावना

4.3 विषय - विवेचन

4.3.1 अलंकार

4.3.1.1 अलंकार : स्वरूप एवं परिभाषाएँ

4.3.1.2 अलंकार : महत्त्व

4.3.1.3 अलंकार के भेद

4.3.1.3.1 शब्दालंकार

4.3.1.3.1.1 अनुप्रास

4.3.1.3.1.2 यमक

4.3.1.3.1.3 श्लेष

4.3.1.3.1.4 वक्रोक्ति

4.3.1.3.2 अर्थालंकार

4.3.1.3.1.1 उपमा

4.3.1.3.1.2 रूपक

4.3.1.3.1.3 उत्प्रेक्षा

4.3.1.3.1.4 दृष्टांत

4.4 स्वयं - अध्ययन के लिए प्रश्न

4.5 पारिभाषिक शब्द, शब्दार्थ

4.6 स्वयं - अध्ययन प्रश्नों के उत्तर

4.7 सारांश

4.8 स्वाध्याय

4.9 क्षेत्रीय कार्य

4.10 अतिरिक्त अध्ययन के लिए

4.1 उद्देश्य :-

प्रस्तुत इकाई का अध्ययन करने के बाद आप,

1. अलंकारों के स्वरूप से परिचित होंगे।
2. अलंकारों के भेदों से अवगत होंगे।
3. शब्दालंकार और अर्थालंकार के बीच का अंतर समझने की क्षमता प्राप्त करेंगे।
4. हिंदी के प्रमुख अलंकारों से परिचित होंगे।
5. अलंकारों के लक्षण और उदाहरण समझ सकेंगे।

4.2 प्रस्तावना :-

साहित्य के कला पक्ष के अंतर्गत विभिन्न सौंदर्यबिंदु आते हैं। उनमें से एक महत्त्वपूर्ण सौंदर्यबिंदु अलंकार है। मूलतः साहित्य या काव्य सुंदर होता है और उसी को अधिक सुसज्जित करनेवाला एक उपादान अलंकार है।अलंकार के कारण सहज उक्ति को एक प्रभावात्मकता तथा चमत्कृतता प्राप्त होती है। साहित्य सृजन करनेवाले लेखक या कवि को और साहित्य का आनंद लेने की इच्छा रखनेवाले पाठक या श्रोता को अलंकारों का ज्ञान होना आवश्यक होता है। साहित्यशास्त्र संबंधी मौलिक चिंतन करनेवाले कई आचार्यों ने अलंकार को काव्य का प्राण तत्व माना है। अलंकार संप्रदाय के आचार्य भामह और अनुवर्ती आचार्यो ने अपने ग्रंथों में अलंकार का स्वरूप, अलंकार के भेद-उपभेद और उनके लक्षण आदि पर प्रकाश डाला है। अध्ङ्कङ्कन की सुविधा के लिए पाठ्यक्रम में कुछ शब्दालंकारों और कुछ अर्थालंकारों का समावेश किया गया है। अलंकार का स्वरूप कैसा है? अलंकार की भाषा कैसी है? अलंकार के भेद और अध्ययनार्थ अलंकारों के लक्षण और उदाहरण आदि संबंधी विद्वानों की धारणा क्या है? इस संदर्भ में हम इस इकाई में अध्ययन करेंगे।

4.3 विषय – विवेचन :-

अब हम अलंकार का स्वरूप एवं महत्व, अलंकार शब्द का अर्थ एवं उसकी परिभाषाएँ, अलंकार के प्रकार और पाठ्यक्रम में समाविष्ट अलंकारों के लक्षण और उदाहरणों पर विचार करेंगे।

4.3.1 अलंकार : स्वरूप एवं परिभाषाएँ :

अलंकार शब्द में 'अलम' उप पद है, जो 'कृ' धातु से संज्ञा में अथवा 'करण' के अर्थ में 'धत्र' प्रत्यय होकर निर्मित हुआ है। 'अलम' शब्द का अर्थ है भूषण। अत: अलंकार का व्युत्पत्तिमूलक अर्थ है - जो भूषित, सुशोभित करे वह अलंकार है। भूषित करनेवाला अर्थात्, जो अलंकृत करे वह अलंकार है। जिस प्रकार अलंकारों को धारण करने पर नारी के रूप सौंदर्य में वृद्धि होती है, उसी प्रकार अलंकार से कविता प्रभावी, सरस और सुंदर बनती है। जिस तरह सुंदर वस्तु, व्यक्ति, स्थान, अक्षर, चित्र, नृत्य तथा भाषण आदि मनुष्य का ध्यान आकर्षित करते हैं और अपना प्रभाव मनुष्य के मानस पटल पर छोडते हैं। उसी तरह किसी काव्य में उच्च कोटी के भाव, विचार, कल्पना तत्व के साथ उसका कला पक्ष भी मजबूत हो, तो वह

काव्य अधिक प्रभावात्मक और सफलता प्राप्त करता है। आभूषण पहनने पर स्त्री या पुरुष का सौंदर्य अधिक खुलकर सामने आता है, उसी तरह अलंकार के कारण काव्य में अभिव्यक्त भाव, विचार, कल्पना खुलकर चमत्कृत, प्रभावात्मक रूप से पाठकों के सामने आते हैं। कवि केशवदास ने अलंकार के संबंध में लिखा है-

जद्‌पि सुजाति सुलच्छनी सुबरन सरस सुवृत्त

भूषण बिनु न बिराजई कविता, वनिता मित्त।।

अर्थात उच्च कुल एवं जाति में जन्मी, सुस्वभाव की, सौंदर्यवान तथा अच्छे लक्षणोंवाली स्त्री का सौंदर्य भूषण पह्नने से अधिक बढता है। उसी तरह भूषण के बिना कविता शोभती नहीं है।

अत: भारतीय साहित्यशास्त्र में अलंकार का स्थान अक्षुण्ण है। एक कवि, लेखक के लिए जितना महत्त्व अलंकार का है, उतना ही पाठक तथा श्रोता के आनंद की दृष्टि से भी अलंकारयुक्त उक्ति का महत्व है। वस्तुत: अलंकार के कारण कविता कामिनी सुसज्जित होती है। मात्र एक बात अवश्य ध्यान में रखनी चाहिए कि जिस तरह से किसी भी बात की अति अप्रभावात्मक होती है उसी तरह अलंकारों का अति प्रयोग भी कविता को बोझील बनाता है। इस संदर्भ में कवि बिहारी ने लिखा है – ''सुधो पाय न धरि सकै सोभा ही कै भार'' इस दृष्टि से रचनाकार या कवि अलंकारों का प्रयोग करता है, तो संबंधित कविता का कला पक्ष संतुलित बनता है और कविता का आशय प्रभावात्मक रूप से पाठक तथा श्रोता तक पहुँचने में सहायता मिलती है।

अलंकार : परिभाषाएँ :-

अलंकार को परिभाषित करने का प्रयास विभिन्न विद्वानों ने किया है। अलंकारवादी वामन ने 'सौंदर्य कार:' कहकर अलंकार को सौंदर्य का पर्यायवाची माना है। भामह के पूर्व अलंकार शब्द काव्य के अंतर्गत और बाह्य दोनों रूपों को अलंकृत करनेवाले उपादानों के लिए प्रयुक्त होता था। बाद में आचार्यों में मतभेद होने पर अलंकार का व्यापक अर्थ संकुचित हुआ। यहाँ चुनिंदा विद्वानों ने अलंकार की जो परिभाषाएँ की है, वह इस प्रकार हैं-

1. **आ. भामह** – 'वक्राभिधेयशब्दोक्तिरिष्टावाचामलंकृति:'

   अर्थात् – शब्द और अर्थ का वैचित्र्य ही अलंकार है।

2. **आ. दण्डी** – 'काव्यशोभाकरान् धर्मालंकारान् प्रचक्षते'

   अर्थात् – अलंकार काव्य को सौंदर्य प्रदान करनेवाले धर्म हैं।

3. **आ. वामन** – 'काव्यं ग्राह्यमलंकारात् सौंदर्यमलंकार:'

   अर्थात् – अलंकार द्वारा ही काव्य ग्राह्य होता है और सौंदर्य ही अलंकार है।

4. **आ. विश्वनाथ** –

''शब्दार्थयोरस्थिरा ये धर्मा: शोभातिशायिन:

रसादीनुपकुर्वन्तोऽ लांकारास्तेप्रद:दादिवत्।।''

अर्थात अलंकार काव्य-शोभा को बढानेवाले रस, भाव आदि के उत्कर्ष में सहायक शब्द और अर्थ के अस्थिर धर्म हैं। जो काव्य की शोभा को उस तरह बढाते है जैसे अंगत आदि आभूषण किसी सुंदरी की शोभा को बढाते है। इस परिभाषा से स्पष्ट है कि विश्वनाथ काव्य में अलंकार की अनिवार्यता स्वीकार नहीं करते।

5. आ. रामचंद्र शुक्ल – ''भावों का उत्कर्ष दिखाने और वस्तुओं के रूप, गुण और क्रिया का अधिक तीव्र अनुभव करने में कभी-कभी सहायक होनेवाली उक्ति अलंकार है।''

अत: विद्वानों ने अलंकार को परिभाषित करते समय अलंकार को केवल काव्य का बाह्य रूप तत्व ही नहीं माना। बल्कि यह स्वीकारा है कि रस, गुण आदि काव्य की अंतरात्मा को पुष्ट करनेवाले सभी तथ्यों का विकास अलंकार के द्वारा होता है। वे अलंकार को काव्य का स्थिर धर्म मानते हैं। भारतीय आचार्यों ने अलंकार में वैचित्र्य एवं सौंदर्य वृद्धि को अधिक महत्त्व दिया है।

4.3.1.2 अलंकार का महत्त्व :-

भारतीय काव्यशास्त्र में अलंकारों को कवि की वाणी को सौंदर्य प्रदान करनेवाले माने जाते हैं। भारतीय काव्यशास्त्र में अलंकारवादी आचार्यों की सुदीर्घ परंपरा रही है। इन आचार्यों ने अलंकारों का स्वरूप, महत्त्व, भेद, लक्षण तथा उदाहरण पर काफी मौलिक चिंतन किया है। साथ ही अलंकारों की काव्य में उपयोगिता और महत्ता पर गंभीर विवेचन भी किया है। यहाँ अलंकार के महत्त्व संबंधी विवेचन प्रस्तुत है-

1. सफल अभिव्यक्ति के लिए :-

साहित्य के दो प्रमुख तत्व होते हैं - भाव पक्ष और कला पक्ष। भावों को प्रभावात्मक रूप से पहुँचाने का कार्य कला पक्ष के अंतर्गत आनेवाली इकाईयाँ करती हैं। अलंकार उनमें से एक प्रमुख इकाई है। इसीकारण ही काव्यशास्त्र में अलंकारों को यथोचित स्थान दिया गया है। डॉ. सभापति मिश्र जी ने अलंकार के महत्त्व संबंधी लिखा है- ''अलंकार को काव्य की आत्मा न मानने पर भी काव्य में अलंकार के महत्त्व की उपेक्षा नहीं की जा सकती। भावावेश की भाषा में अलंकारों का समावेश अपने आप हो जाता है। अनुभूतियों की सघनता के साथ-साथ काव्यभाषा स्वयमेव अलंकारों से सुसज्जित हो जाती है। अलंकारों द्वारा अर्थ गांभीर्य सुनिश्चित होता है तथा कवि अपनी बात सफलतापूर्वक अभिव्यक्त करने में सफल होता है।'' इससे कहना सही होगा कि अलंकार काव्य के कला पक्ष का प्रमुख उपादान है। अलंकारों का प्रयोग भावों की सफल अभिव्यक्ति की दृष्टि से भी महत्वपूर्ण होता है। अलंकार भावों को अधिक रमणीय बनाकर एक सौंदर्य प्रदान करते हैं। डॉ. महेंद्र रघुवंशी के विचारानुसार, ''अलंकार भावों को परिष्कृत करके उन्हें चमत्कारपूर्ण और प्रभावोत्पादक बनाते हैं।'' संक्षेप में अलंकारों के कारण साहित्य चाहे वह गद्य हो या पद्य वह रमणीय तथा आकर्षक बनता है। अत: अलंकारयुक्त भाषा में लिखा साहित्य पढकर पाठक का हृदय रसमय होकर विशिष्ट अंग से आप्लवित हो जाता है।

2. सौंदर्यपरक उपादान :–

सौंदर्य की ओर आकर्षित होना मनुष्य का जन्मजात स्वभाव है। मनुष्य केवल स्वयं को सुंदर रूप में देखना ही नहीं चाहता, तो अपने आपको सुंदर ढंग से अभिव्यक्त भी करना चाहता है। कवि भी स्वाभाविक रूप से मनुष्य को अपनी ओर आकर्षित करने की क्षमता रखनेवाले अलंकार का महत्त्व समझते हैं। जब कवि काव्य अनुभूति के क्षणों को कलापूर्ण अभिव्यक्त करना चाहता है तब अन्य काव्य सौंदर्य के साधनों के साथ अलंकारों की सहायता लेता है। कवि अलंकारों का सहजता से प्रयोग करके अपना रचना विषय प्रभावात्मक ढंग से प्रस्तुत करता है। प्रतिभावान कवि स्वाभाविक रूप से अलंकारों का प्रयोग करता है। अत: सौंदर्यपरक उपादान के रूप में अलंकार का अलग महत्त्व है।

3. कल्पकता को गति देने की दृष्टि से उपयुक्त :–

साहित्य में अलंकारों का स्थान क्या है? इस संदर्भ में विचार करते समय कई विद्‌वान आलंकारिकता के कारण ही काव्य उपयोगी है ऐसा मानते हैं। तो कई विद्वान अलंकार को एक तरह का बंधन मानते हैं। उनके मतानुसार कवि कल्पना के बंधन में रहकर कल्पना की उडान भरने में असमर्थ होता है। मात्र यह विचार एकांगी एवं पूर्वग्रहदूषितता से प्रभावित है। इसके उलट तटस्थता से चिंतन करें, तो स्पष्ट होता है कि अलंकार कवि की कल्पकता में बाधा नहीं डालते। बल्कि उसकी गति को बढाने का काम करते हैं। जब कवि अपनी काल्पनिकता व्यक्त करने में अपने आपको असमर्थ पाता है, तब वह अलंकार का आधार लेकर कल्पना को गति देता है। कवि अलंकारों की सहायता से अपनी काल्पनिक भावनाएँ सटिक रूप में अभिव्यक्त करता है।

4. रहस्यवाद का प्रस्तुतीकरण करने के लिए आवश्यक :–

रहस्यवादी कवि रहस्यवादी विचार साधारण रूप में अभिव्यक्त नहीं करते। ऐसे कवि को रहस्यवादी विचार तथा भावना व्यक्त करने के लिए रूपक और अन्योक्ति अलंकार जैसे अलंकारों का सहारा लेना पडता है। संत कबीर जैसे रहस्यवादी संत कवियों ने रहस्यवाद के प्रस्तुतीकरण के समय अलंकारों का आश्रय लिया है।

5. सामान्य कथन में लाभप्रद :–

अलंकार साहित्य की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है ही। मात्र लोक व्यवहार में सामान्य कथन को भी अधिक सौंदर्यात्मक, स्पष्टतायुक्त और प्रभावात्मक बनाने में अलंकारों का योगदान रहता है। श्रोताओं को हृदय को छू लेनेवाली अलंकारयुक्त भाषा और शैली आनंद देती है। अलंकारयुक्त भाषा बोलनेवाला व्यक्ति श्रोताओं की दृष्टि से आकर्षण का विषय होता है। इसीकारण केवल कवि ही नहीं पर शब्द, अर्थ, अक्षर, ध्वनि की क्षमता जाननेवाला साधारण मनुष्य और वक्तृत्व कला में माहिर आदमी भी अपनी अलंकारप्रधान वाणी से सामनेवालों के हृदय जीतता है।

6. साहित्य की आत्मा के रूप में महत्त्व :–

आचार्य भामह जैसे अलंकार संप्रदाय के आचार्यों ने तो अलंकार को ही काव्य का सर्वस्व माना है। वे रस का उद्‌भव भी रसवत् नामक अलंकार से ही मानते हैं। आचार्य भामह ने अलंकार को काव्य की आत्मा

मानकर काव्य के अन्य सौंदर्य अंग रस, ध्वनि को भी अलंकार से प्रभाविने माना है। साहित्य की आत्मा को लेकर विद्वानों में एकमत नहीं है। रसवादियों ने 'रस' को, अलंकारवादियों 'अलंकार' को, रीतिवादियों ने 'रीति'. को तो ध्वनिवादियों ने 'ध्वनि' को काव्य की आत्मा माना है। इससे एक निश्चित है कि विद्वानों ने काव्य सौंदर्य की दृष्टि से जो अधिक महत्त्वपूर्ण साधन समझा उसे काव्य की आत्मा घोषित किया है। पर उन्होंने अन्य सौंदर्यबिंदुओं का महत्त्व नकारा नहीं है। अलंकार काव्य की आत्मा हो या न हो, पर काव्य का सौंदर्य बढानेवाला एक कारण है इसे हम नकारते नहीं है।

नि:संदेह काव्य में अलंकारों को अनन्यसाधारण महत्त्व है। अलंकार काव्य में चमत्कार उत्पन्न करते हैं। मात्र यह भी याद रखना आवश्यक है कि अलंकार काव्य सौंदर्य वृद्धि के साधन हैं, साध्य नहीं। अलंकारों का काव्य में महत्त्वपूर्ण स्थान है, पर वे काव्य के मूलतत्वों का स्थान नहीं ले सकते हैं।

4.3.1.3 अलंकार के भेद

भारतीय आचार्यों ने अलंकार निरुपण करते समय ऐसा माना है कि काव्यगत अलंकार शब्द तथा अर्थ में निवास करते हैं। किसी भी कथन में शब्दगत, अर्थगत और शब्दार्थगत प्रकार का चमत्कार एवं सौंदर्य निर्माण होता है। काव्य में अलंकारों की स्थिति के अनुसार अलंकार के तीन भेद किए जाते हैं - 1. शब्दालंकार, 2. अर्थालंकार, 3. उभयालंकार। आचार्य मम्मट के अनुसार इस विभाजन का आधार 'अन्वय व्यतिरेक संबंध' है। जिसके रहने पर जो रहे वह अन्वय कहलाता है और जिसके न रहने पर जो न रहे वह व्यतिरेक। इसका तात्पर्य यह है कि जिस शब्द के कारण चमत्कार हो उसके स्थान पर उसका पर्यायवाची शब्द रखने पर यदि चमत्कार नष्ट हो जाए तो शब्दालंकार तथा चमत्कार नष्ट न हो तो अर्थालंकार माना जाता है और जहाँ दोनों स्थितियाँ बनी रहे वहाँ शब्दार्थालंकार (उभयालंकार) माना जाता है।

1. शब्दालंकार (Figure of Speech in Words)

जो अलंकार काव्य में शब्द के द्वारा चमत्कार उत्पन्न करते हैं उनको शब्दालंकार कहते हैं। जिस कथन में शब्द को मुख्य और तुलना में अर्थ को गौण स्थान होता है और शब्दों के कारण ही सौंदर्य या चमत्कार निर्माण होता है, वहाँ शब्दालंकार होता है।

शब्दालंकार भाषा का बाह्य सौंदर्य बढाते हैं। इस प्रकार में केवल शब्दगत चमत्कार होता है। शब्दों द्वारा चमत्कार एवं सौंदर्य उत्पन्न किया जाता है। पर जिन शब्दों के कारण किसी कथन में चमत्कार एवं सौंदर्य उत्पन्न किया जाता है। यदि उन शब्दों के स्थान पर उसी अर्थ के दूसरे शब्द रख दिए, तो वहाँ का चमत्कार और सौंदर्य समाप्त हो जाता है। तात्पर्य यह है कि शब्दालंकार में शब्द अपने स्थान से हटाया नहीं जा सकता। विद्वान शब्द के दो रूप मानते हैं 1. ध्वनि, 2. अर्थ। ध्वनि के आधार पर शब्दालंकार निर्माण होते हैं। शब्दालंकार में वर्ण या शब्दों की लयात्मकता होती है। राजा भोज ने शब्दालंकार की परिभाषा करते समय लिखा है-

''ये व्युत्पत्यादिना शब्दमलंककर्तुमिहक्षमा :
शब्दालङ्कारसंज्ञास्त।''

जैसे – अनुप्रास यमक, वक्रोक्ति, वीप्सा, पुनरुक्ति प्रकाश, चित्र, श्लेष आदि शब्दालंकार हैं।

2. अर्थालंकार (Figure of Speech in Sense)

जो अलंकार काव्य में अर्थ के द्वारा चमत्कार उत्पन्न करते हैं, उनको अर्थालंकार कहते हैं। जिस कथन में अर्थ को मुख्य और तुलना में शब्द को गौण स्थान होता है और अर्थ के कारण सौंदर्य या चमत्कार निर्माण होता है, वहाँ अर्थालंकार होता है।

दूसरे शब्दों में अर्थ वैचित्र्य की रचना द्वारा काव्य को शोभित करनेवाले अलंकारों को अर्थालंकार कहते हैं। अर्थालंकारों में अर्थ की विचित्रता पर चमत्कार या सौंदर्य निर्माण होता है। अर्थालंकार काव्य को प्राकृतिक सौंदर्य प्रदान करते हैं। अर्थात् शब्द की अपेक्षा अर्थ संबंधी सौंदर्य हो, वहाँ अर्थालंकार होता है। अर्थालंकार में पर्यायवाची शब्द रखने पर भी चमत्कार बना रहता है। जैसे ''सुमनों-सी मुस्कान तुम्हारी'' में सुमनों शब्द के स्थान पर पुष्पों एवं फुलों को रख देने से अलंकार और अर्थगत सौंदर्य में कोई अंतर नहीं पडता। जैसे – उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, अतिशयोक्ति, भ्रांतिमान, उल्लेख, व्यतिरेक, अन्योक्ती, दृष्टांत, प्रतिव्यस्तुपमा, तुलय-योगिता, दीपक, अपह्नति, निदर्शना, प्रतीप, तद्गुण, मीलित, उन्मीलित, कारणमाला, एकावली, काव्यलिंग, असंगति, परिकर, परिकरांकुर, परिवृत्त, परिसंख्या, प्रत्यनिक, व्याजस्तुति, अप्रस्तुतप्रशंसा, समासोक्ति, मुद्रा, यथासंख्य, पर्यायोक्ति, विभावना, विशेषोक्ति आदि अर्थालंकार हैं।

3. अभयालंकार (Figure of Speech in Words ans Sense)

जो अलंकार काव्य में शब्द और अर्थ दोनों के द्वारा चमत्कार उत्पन्न करते हैं, उनको उभयालंकार कहते हैं। जिस कथन में शब्दगत और अर्थगत दोनों ही कोटी के चमत्कार प्रधान होते हैं, वहाँ उभयालंकार माना जाता है। जैसे – संसृष्टि, संकर आदि उभयालंकार है।

संक्षेप में, अलंकारों के तीन प्रकार हैं। शब्दसंबंधी चमत्कार एवं सौंदर्य से युक्त अलंकारों को शब्दालंकार कहा जाता है। अर्थ संबंधी चमत्कार एवं सौंदर्य युक्त अलंकारों को अर्थालंकार कहते हैं। जिन अलंकारों को में शब्द और अर्थ दोनों का चमत्कार होता है, उन्हें उभयालंकार कहा जाता है।

4.3.1.3 अलंकार के भेद :

आचार्यों ने अलंकारों को तीन प्रकारों में विभक्त किया है – 1. शब्दालंकार (Figure of Speect in Words), 2. अर्थालंकार (Figure of Speech in sence) 3. उभयालंकार (Figure of Speech in Words and Sense) हमारे पाठ्यक्रम में शब्दालंकार और अर्थालंकार का समावेश किया गया है। अतः यहाँ हम उन पर विवेचन करेंगे।

4.3.1.3.1 शब्दालंकार

4.3.1.3.1.1 अनुप्रास (Alliteration)

लक्षण :

1. यह शब्दालंकार है।

2. 'अनुप्रास' शब्द का अर्थ है - 'अनु' अर्थात बार-बार और 'प्रास' का अर्थ पास-पास रखना, अर्थात् जहाँ पर एक ही वर्ण (अक्षर) बार-बार अथवा पास-पास आते हैं, वहाँ पर अनुप्रास अलंकार होता है।

3. जब एक ही वर्ण (अक्षर) की एक की क्रम से आवृत्ति होती है, तब अनुप्रास अलंकार होता है।

4. इसमें केवल व्यंजन वर्णों की समानता या आवृत्ति अपेक्षित है। स्वरों की समानता अपेक्षित नहीं है। स्वर के विषम होने पर भी अनुप्रास अलंकार बना रहता है।

5. अनुप्रास अलंकार के पाँच भेद हैं- छेकानुप्रास, वृत्यानुप्रास, श्रुत्यानुप्रास, लाटानुप्रास और अंत्यानुप्रास।

उदाहरण :

1. ''चारू चंद्र की चंचल किरणे
   खेल रही थी जल-थल में।
   स्वच्छ चाँदनी बिछी हुई थी
   अंबर और अवनी स्थल में।।''

ऊपरोक्त काव्य-पंक्तियों में 'च' और 'ल' वर्ण की पुनरावृत्ति हुई है। अत: यहाँ अनुप्रास अलंकार की सुंदर अभिव्यक्ति हुई है

2. ''लाली मेरे लाल की, जिथ देखन तिथ लाल।
   लाली देखन मैं गई, मैं भी हो गई लाल।।''

ऊपरोक्त उदाहरण में 'ल', 'थ' और 'ख' वर्ण की पुनरावृत्ति एक से अधिक बार हुई है। अत: यहाँ पर अनुप्रास अलंकार की सुंदर अभिव्यक्ति दृष्टव्य है।

4.3.1.3.1.2 यमक (Syllables similar in words)

लक्षण :

1. यह शब्दालंकार है।

2. इस अलंकार में एक शब्द की पुनरावृत्ति एक से अधिक बार होती है और अलग-अलग जगह पर उस शब्द का अर्थ अलग-अलग होता है।

3. इस अलंकार में एक ही रूप के भिन्नार्थक या निरर्थक समान स्वरवाले व्यंजनसमुदाय की आवृत्ति होती है।

4. यमक अलंकार के चार उपभेद हैं - सार्थक, निरर्थक, सभंगपद और अभंगपद।

उदाहरण :

1. ''अब क्या सोच रहे हो 'कर्ण?'

कर्ण तक खिंच ले धनुष्य की डोर''

ऊपरोक्त उदाहरण में कर्ण शब्द की पुनरावृत्ति एक से अधिक बार हुई है। पहली पंक्ति में आया हुआ 'कर्ण' शब्द व्यक्तिवाचक संज्ञा के रूप में महाभारत का पात्र कर्ण है। तो दुसरी पंक्ति में आया हुआ 'कर्ण' शब्द शरीर का एक अंग के रूप में प्रयुक्त हुआ है। अत: यहाँ यमक अलंकार की सुंदर अभिव्यक्ति हुई है।

2. ''कनक-कनक ते सौ गुनी मादकता अधिकाय।

वा खाए बौराय नर या पार बौराय।।''

ऊपरोक्त उदाहरण में पहला 'कनक' शब्द स्वर्ण का वाचक है तथा दूसरे 'कनक' का अर्थ धत्तुरा है। अत: यहाँ यमक अलंकार की सुंदर अभिव्यक्ति हुई है।

4.3.1.3.1.3 **श्लेष**

'श्लेष' का शाब्दिक अर्थ है - 'चिपका हुआ'। श्लेष अलंकार में एक से अधिक अर्थ शब्द में चिपके रहते हैं। किसी शब्द का एक बार प्रयोग होने पर भी उसके अर्थ एक से अधिक हो, तो वहाँ पर श्लेष अलंकार होता है।

उदा. १) *''चरन धरत शंका करत, भावत नींद न शोर।*

सुवरन को ढूँढ़त फिरत, कवि व्यभिचारी चोर।।''

यहाँ 'चरन' तथा 'सुवरन' पद श्लिष्ट हैं; जिनके कवि, व्यभिचारी और चोर के साथ भिन्न अर्थ हैं, जो शब्दों को बिना तोड़े हुए निकल आते हैं।

कवि छंद का चरण लिखते हुए त्रुटि की संभावना से शंकित रहता है, तथा वह 'सुवरण'- सुंदर वर्णों को काव्य-प्रयोग के लिए ढूँढ़ता है।

व्यभिचारी 'चरण'- पैरों की आवाज़ से शंका करता है कि कहीं कोई आ न जाए तथा वह 'सुवरण'- सुदर वर्ण (गौरांग) की तलाश में रहता है।

चोर स्वयं 'चरण'- कदम रखते हुए शंकित रहता है तथा वह 'सुवरण'- सोने की तलाश में घूमता है।

यहाँ 'चरण' तथा 'सुवरण' के स्थान पर 'कदम' तथा 'कंचन' रख देने से छंद निरर्थक हो जाएगा। अत: यहाँ श्लेष अलंकार है।

उदा. २) *''चिरजीवै जोरी जुरै, क्यों न सनेह गंभीर।*

को घटि ए वृषभानुजा, वे हलधर के बीर।''

यहाँ पर 'हलधर' तथा 'वृषभानुजा' श्लिष्ट पद हैं। 'हलधर' का एक अर्थ है- कृष्ण के बडे भाई बलराम, और दूसरा अर्थ है - हल को धारण करने वाला अर्थात् बैल। किंतु 'वृषभानुजा' के दो अर्थ करने के लिए उसे दो प्रकार से तोड़ना पड़ता है -

वृषभ + नु + जा = (वृषभानु सुता राधिका) तथा

वृषभ + अनुजा = (बैल की भगिनी गाय)।

अत: यहाँ श्लेष अलंकार है।

4.3.1.3.1.4 वक्रोक्ति (Rhetoric / The Crooked Speech)

लक्षण :

1. यह शब्दालंकार है।
2. किसी अन्य से कहे हुए वाक्य का दूसरे व्यक्ति द्वारा श्लेष अथवा काकु उक्ति से अन्य अर्थ कल्पित करना ही वक्रोक्ति अलंकार है।
3. श्रोता जब वक्ता के कथन का अन्य अर्थ कल्पित करता है और उसी कल्पित अर्थ के आधार पर प्रश्न का उत्तर देता है, तो वहाँ वक्रोक्ति अलंकार होता है।
4. वक्रोक्ति के दो प्रमुख भेद हैं – श्लेष वक्रोक्ति और काकु वक्रोक्ति।

उदाहरण :

1. ''एक कबुतर देख हाथ में पूछा कहाँ अपर है?
   उसने कहा, अपर कैसा? वह उड गया सपर हैं।''

उपरोक्त उदाहरण में नूरजहाँ के हाथ में एक कबुतर देखकर जहाँगीर ने पूछा कि दूसरा कहाँ है? जहाँगीर ने अपर का प्रयोग 'दूसरे' के अर्थ में किया। किंतु नूरजहाँ ने 'अपर' का अर्थ पंख विहिन समझा और उत्तर दिया कि वह पर (पंख) वाला था इसलिए उड गया। अत: यहाँ श्लेष वक्रोक्ति अलंकार की सुंदर अभिव्यक्ति हुई हैं।

2. ''है री लाल तेरे?
   सखी ऐसी निधि पाई कहाँ
   है री खगयान?
   कह्यौ हौ तो नहीं पाले हौ?''

प्रस्तुत उदाहरण में निधि और खग श्लेषार्थी है। नटखट बालकृष्ण की शिकायत करनेवाली गोपी यशोदा को कहती है कि तेरा लाल (बच्चा) अच्छा है। ऐसी निधि (धन) कहा मिली? इसमें अभिधार्थ नहीं है, तो श्रीकृष्ण जैसा नटखट लडके की शिकायत का स्वर प्रमुख है। अत: यहाँ वक्रोक्ति अलंकार की सुंदर अभिव्यक्ति हुई हैं।

4.3.1.3.2 अर्थालंकार

4.3.1.3.1.1 उपमा (Simile)

लक्षण :

1. यह अर्थालंकार है।

2. उपमा का सामान्य अर्थ है किसी वस्तु की अन्य किसी दूसरी वस्तु के साथ समानता के आधार पर तुलना करना।

3. उपमा का शाब्दिक अर्थ है – 'उप' अर्थात समीप से तो 'मा' का अर्थ तौलना (देखना) अर्थात एक वस्तु के समीप दूसरी वस्तु को रखकर उनकी समानता प्रतिपादित करना।

4. जहाँ समान गुण, धर्म या विशेषता के अनुसार एक वस्तु की तुलना किसी दूसरी वस्तु से करके दोनों में समानता देखी जाती है, वहाँ उपमा अलंकार होता है।

5. उपमा अलंकार के चार अंग हैं–

अ) उपमेय (प्रस्तुत) – जिस वस्तु की तुलना की जाती है उसे उपमेय कहते हैं।

आ) उपमान (अप्रस्तुत) – जिस वस्तु से तुलना की जाती है उसे उपमान कहते हैं।

इ) साधारण धर्म – वह गुण अथवा विशेषता जिसके आधार पर उपमेय और उपमान की तुलना की जाती है, उसे साधारण धर्म कहते हैं।

ई) वाचक शब्द – वह शब्द जिसके द्वारा तुलना का भाव प्रकट किया जाता है, उसे वाचक शब्द कहते हैं। वाचक शब्द – सा, सी, से, सरिस, सदृश्य, समान, तुल्य, जैसा आदि।

उदाहरण :

1. ''दो दिवस रहकर कुटी में
   आग-सी सुलगा गये हैं।
   दीप-सा हिय जल रहा है,
   कह दो तुम्हीं कैसे बुझाऊँ।''

उपर्युक्त उदाहरण में उपमेय ह्रदय, उपमान-दीप, साधारण धर्म-जल रहा और वाचक शब्द-सा है। यहाँ पूर्णोपमा अलंकार की सुंदर अभिव्यक्ति हुई है।

2. पीपल पात सरिस मन डोला।

इस उदाहरण में उपमेय- मन, उपमान-पीपल पात, साधारण धर्म-डोलना और वाचक शब्द-सारिस है। अत: यहाँ उपमा अलंकार की सुंदर अभिव्यक्ति हुई है।

3. सीता का मुख चंद्रमा के समान सुंदर है।

इस उदाहरण में उपमेय-सीता का मुख, उपमान-चंद्रमा, साधारण धर्म-सुंदर और वाचक शब्द समान है। अत: यहाँ उपमा अलंकार की सुंदर अभिव्यक्ति हुई है।

4.3.1.3.1.2 रूपक (Metaphor) :

लक्षण :

1. यह अर्थालंकार है।

2. रूपक का मतलब है रूप ग्रहण करना।

3. जब उपमेय पर उपमान का अभेद रूप से आरोप किया जाता है, वहाँ रूपक अलंकार होता है।

4. इस अलंकार में एक वस्तु के साथ दूसरी वस्तु को इस प्रकार रखा जाता है कि दोनों के बीच का अंतर ही नहीं दिखायी देता है।

5. रूपक अलंकार में उपमा का एक अंग साधारण धर्म का कथन नहीं किया जाता है।

6. इस अलंकार के तीन भेद हैं - अभेद रूपक, तद्रूप रूपक और परंपरित रूपक।

उदाहरण :

1. ''बीती विभावरी जाग री

अम्बर-पनघट में डुबो रही तारा-घट उषा नागरी।''

प्रस्तुत उदाहरण में अंबर पर पनघट का अभेद रूप से आरोप किया है उसी तरह तारा पर घट (कुंभ) और उषा (प्रात:काल) पर नागरि (नवयुवती) का अभेद रूप से आरोप किया है। अत: यहाँ रूपक अलंकार की सुंदर अभिव्यक्ति हुई है।

2. नेत्र कमल है।

ऊपरोक्त उदाहरण में नेत्र (उपमेय) और कमल (उपमान) का भेद मिटाकर अभिन्नता दिखाई गई है । नेत्र पर कमल का आरोप है। अत: यहाँ रूपक अलंकार की सुंदर अभिव्यक्ति हुई है।

4.3.1.3.1.3 उत्प्रेक्षा

जब उपमेय में उपमान की संभावना या कल्पना कर ली जाए, तब उत्प्रेक्षा अलंकार होता है। मानहु, मनु, जनु, मानो, जानो, जानहु, ज्यों इन, मन है आदि इसके वाचक शब्द हैं।

1. यह अर्थालंकार है। 2. उत्प्रेक्षा का शाब्दिक अर्थ उद्‌भावना या आरोप। 3. इस अलंकार के तीन भेद है - वस्तुप्रेक्षा और फलोत्प्रेक्षा।

उदा. 1) *''नील परिधान बीच सुकुमार, खिल रहा मृदुल अधखुला अंग।*

खिला हो ज्यों बिजली का फूल, मेघ बन बीच गुलाबी रंग।।''

प्रस्तुत उदाहरण में नीले परिधान के बीच खुले रहे अंग में, मेघों के बीच खिल रहे बिजली के फूल की संभावना (कल्पना) की गई है। अत: यहाँ उत्प्रेक्षा अलंकार है।

2) *''नित्य ही नहाता है चंद्र क्षीर-सागर में।*

सुन्दरि! मानो तुम्हारे मुख की समता के लिए।''

प्रस्तुत उदाहरण में चंद्रमा का क्षीरसागर में नहाने का उद्‌देश्य वास्तव में किसी सुंदरी के मुख की समता करने के लिए नहीं है, फिर भी कवि ने इसकी कल्पना कर ली है। अत: यहाँ उत्प्रेक्षा अलंकार है।

3) *''प्रसाद मानो चाहते हैं चूमना आकाश को।''*

उक्त पंक्ति में प्रासाद का आकाश को छूने में जो आकाश को चूमने का कारण स्थापित किया गया है, वह वास्तविक नहीं है। क्योंकि प्रासाद कभी भी आकाश को नहीं चूमना चाहेंगे। लेकिन फिर भी यह कारण कल्पित किया गया है। 4. नेत्र मानो कमल हैं। अत: यहाँ उत्प्रेक्षा अलंकार है।

4.3.1.3.1.4 दृष्टांत :

लक्षण :

1. यह अर्थालंकार है।
2. जब उपमेय और उपमान वाक्य तथा उनके साधारण धर्म का बिम्ब-प्रतिबिम्ब भाव (भावसाम्य) दिखाई देते है, तब उसे दृष्टांत अलंकार कहते हैं।
3. पहले वाक्य में कोई बात कही जाए तो दूसरे वाक्य में उससे मिलती जुलती कोई दूसरी बात कही जाए।
4. दूसरा वाक्य पहले वाक्य के उदाहरण की तरह हो और दोनों बातों की समता किसी साधारण धर्म की एकता के कारण न हो।

उदाहरण :

1. ''निरखि रूप नंदलाल को दूगनि रुचै अचै नहिं आन।

   तजि पियूष कोऊ करत, कटु औषधी पान।।''

   जिन आँखो ने नंदलाल को देख लिया है उन्हे भला और कोई कैसे अच्छा लग सकता है? क्या अमृत को त्याग कर कोई कडवा औषधि को पसंद कर सकता है। यहाँ प्रथम वाक्य का दृष्टांत दूसरे वाक्य में ..... है।

2. ''पापी मनुज भी आज मुख से राम नाम निकालते।

   देखो, भयंकर भेडिये भी आज आसूँ डारते।।''

   ऊपरोक्त उदाहरण में पापी मनुष्य का प्रतिबिम्ब भेडिये में तथा राम-नाम का प्रतिबिम्ब आँसू से पड रहा।

4.4 स्वयं-अध्ययन के लिए प्रश्न :

निम्नलिखित वाक्यों में दिए गए विकल्पों में से उचित विकल्प चुनकर वाक्य फिर से लिखिए।

1) अलंकार के कुल मिलाकर .... प्रकार हैं।

   अ) पाँच   ब) तीन   क) दो   ड) छ:

2) .... भाषा का बाह्य सौंदर्य बढाते हैं।

   अ) शब्दालंकार   ब) अर्थालंकार   क) मिश्रालंकार   ड) उभयालंकार

3) अनुप्रास .... प्रकार का अलंकार है।

अ) अर्थालंकार ब) शब्दालंकार क) उभयालंकार ड) सुक्ष्मालंकार

4) काव्य में ...... के द्वारा चमत्कार उत्पन्न होता है, तो उनको अर्थालंकार कहते हैं।

अ) भाव ब) शब्द क) विचार ड) अर्थ

5) उपमा अलंकार के कुल .... अंग हैं।

अ) चार ब) तीन क) सात ड) दो

6) काव्य में शब्द और अर्थ के द्वारा चमत्कार उत्पन्न करनेवाले अलंकार को ...... अलंकार कहते हैं।

अ) अर्थालंकार ब) शब्दालंकार क) उभयालंकार ड) भावालंकार

7) .... में शब्द अपने स्थान से हटाया नहीं जा सकता।

अ) उभयालंकार ब) शब्दालंकार क) अर्थालंकार ड) स्थायी अलंकार

9) .... अलंकार में पर्यायवाची शब्द रखने पर भी चमत्कार बना रहता है।

अ) पर्याय ब) शब्दा क) अर्था ड) उभया

9) अलंकार साहित्य का .... पक्ष का एक अंग है।

अ) कला ब) भाव क) विचार ड) कल्पना

10) .... अलंकार में वर्ण (अक्षर) की पुनरावृत्ति होती है।

अ) यमक ब) दृष्टांत क) अनुप्रास ड) विभावना

11) .... अलंकार में शब्द की पुनरावृत्ति होती है और उसका अर्थ अलग-अलग स्थान पर अलग-अलग होता है।

अ) यमक ब) दृष्टांत क) अनुप्रास ड) विभावना

12) कथन में ..... के विषम होने पर भी अनुप्रास अलंकार बना रहता है।

अ) व्यंजनों ब) संयुक्त व्यंजनों क) स्वरों ड) क्रियाओं

13) वक्रोक्ति .... प्रकार का अलंकार है।

अ) शब्दालंकार ब) अर्थालंकार क) वक्र अलंकार ड) भावालंकार

14) 'लाली मेरे लाल की जिथ देखन तिथ लाल' इस पंक्ति में .... अलंकार है।

अ) यमक ब) अनुप्रास क) अन्योक्ति ड) श्लेष

15) वक्रोक्ति अलंकार में किसी ने कहे हुए वाक्य का दूसरा व्यक्ति श्लेष अथवा ..... उक्ति से अन्य अर्थ कल्पित करता है।

अ) काकू ब) सभंग क) अभंग ड) भावपूर्ण

16) 'अब क्या सोच रहे हो कर्ण?' कर्ण तक खिंच ले धनुष्य की डोर।।' इन काव्य-पंक्तियों में .... अलंकार है।

अ) अनुप्रास ब) विभावना क) यमक ड) उपमा

17) .... अलंकार में किसी एक वस्तु की किसी दूसरी वस्तु के साथ समानता के आधार पर तुलना की जाती है।

अ) उपमेय ब) उपमान क) उपमा ड) विभावना

18) जिस वस्तु की तुलना की जाती है, उसे ...... कहते हैं।

अ) उपमेय ब) उपमान क) उपादेय ड) उपक्रम

19) जब उपमेय पर उपमान का अभेद रूप से आरोप किया जाता है, वहाँ ..... अलंकार होता है।

अ) रूपक ब) अनुप्रास क) यमक ड) वीप्सा

20) .... अलंकार में लोक-मर्यादा का उल्लंघन होनेवाला कथन होता है।

अ) अनुप्रास ब) भ्रांतिमान क) अतिशयोक्ति ड) उत्प्रेक्षा

21) ...... संबंधी की जानेवाली विलक्षण कल्पना विभावना अलंकार है।

अ) कारण ब) रूपक क) उपमेय ड) उपमान

22) ''अम्बर पनघट में डूबो रही तारा-घट उषा नागरी'' इस काव्य-पंक्ति में 'अंबर' पर .... का अभेद रूप से आरोप किया है।

अ) उषा ब) आकाश क) तारा ड) पनघट

23) 'पीपल पात सरिस मन डोला' इस काव्य-पंक्ति में उपमेय ...... है।

अ) पीपल ब) पात क) मन ड) डोलना

24) रूपक अलंकार में उपमा का एक अंग ..... का कथन नहीं किया जाता।

अ) उपमेय ब) उपमान क) साधारण धर्म ड) वाचक शब्द

25) उपमा अलंकार में जिस शब्द के द्वारा तुलना का भाव प्रकट किया जाता है उसे ..... शब्द कहते हैं।

अ) लक्ष्यक ब) व्यंगार्थ क) वाचक ड) समानार्थक

26) रूपक .... प्रकार का अलंकार है।

अ) शब्दालंकार ब) अर्थालंकार क) उभयालंकार ड) रुपालंकार

27) उपमा अलंकार में जिस वस्तु से तुलना की जाती है, उसे .... कहते हैं।

अ) उपमान ब) प्रस्तुत क) उपमेय ड) वाचक शब्द

28) शब्दालंकार में ....को प्रधान और तुलना में अर्थ को गौण स्थान होता है।

अ) शब्द ब) कर्म क) भाव ड) विचार।

29) .... के आधार पर शब्दालंकार उत्पन्न होते हैं।

अ) अर्थ　　ब) पद　　क) ध्वनि　　ड) वाक्य

30) अर्थालंकार काव्य को ....सौंदर्य प्रदान करते हैं।

अ) प्राकृतिक　　ब) रचनागत　　क) मानवगत　　ड) स्वभावगत

4.5 पारिभाषिक शब्द, शब्दार्थ :

1. आभूषित - सुशोभित करना।
2. चारू - सुंदर।
3. आवृत्ति - बार - बार आना, पुनरावृत्ति।
4. अभिन्न - जो भिन्न न हो।
5. चंचल - अस्थिर।
6. सुजाति - उच्च वर्ण की।
7. शोभा - कांति, चमक।
8. चमत्कार - अद्‌भूत, अकल्पित बात।
9. उक्ति - चमत्कार कथन, वचन, अनोखा वाक्य।
10. अवनी - पृथ्वी, भूमि।
11. काकु - कंठ ध्वनि।
12. श्लेष - चिपका हुआ।
13. आकस्मिक - अचानक।
14. नीर - जल, पानी, रस ।
15. पुनि - पुनश:।
16. हिय - हृदय।
17. अरुण - सूर्य, लाल रंग।
18. मधु - वसंत ऋतु।
19. निशाचर - दानव, भूत,चोर।
20. कुटी - झोपडी।
21. सरिस - समान।
22. उपादान - प्राप्ति, वह सामग्री जिससे कोई वस्तु बने।
23. दृष्टांत - निश्चित एवं प्रामाणिक रूप देखना।
24. उत्प्रेक्षा - उद्‌भावना या आरोप।

4.6 स्वयं-अध्ययन प्रश्नों के उत्तर :

उचित पर्याय :

1. तीन	2. शब्दालंकार	3. शब्दालंकार	4. अर्थ
5. चार	6. उभयालंकार	7. शब्दालंकार	8. अर्था
9. कला	10. अनुप्रास	11. यमक	12. स्वरों
13. शब्दालंकार	14. अनुप्रास	15. काकु	16. यमक
17. आवृत्ति	20. उपमा	21. उपमेय	22. रूपक
23. अतिशयोक्ति	24. कारण	25. पनघट	26. मन
27. साधारण धर्म	28. वाचक	29. अर्थालंकार	30. उपमान
31. शब्द	32. ध्वनि	33. प्राकृतिक	

4.7 सारांश :

- अलंकार काव्य की शोभा बढानेवाला प्रमुख साधन है। अलंकार के कारण सामान्य बात विशेष मनोहर रूप में प्रस्तुत हो जाती है।
- अलंकारों के तीन भेद हैं - शब्दालंकार, अर्थालंकार और उभयालंकार।
- अलंकार के कारण साहित्य सरस, सुंदर और प्रभावात्मक बन जाता है।
- साहित्य के कला पक्ष का एक प्रमुख सौंदर्यवर्धक उपादन, भावों की सफल अभिव्यक्ति, कल्पकता को गति, रहस्यवाद का प्रस्तुतीकरण तथा श्रोता या पाठक के हृदय को प्रभावित करनेवाला साधन के रूप में अलंकार का विशेष महत्त्व है।
- शब्दालंकारों में शब्दगत सौंदर्य का चमत्कार होता है, तो अर्थालंकार में शब्द की अपेक्षा अर्थ के द्वारा चमत्कार होता है। उभायालंकार में शब्द और अर्थ इन दोनों के कारण काव्य-सौंदर्य में वृद्धी होती है।
- अनुप्रास में एक ही वर्ण की आवृत्ति होती है। वक्रोक्ति में श्लेष अथवा काकु उक्ति से अन्य अर्थ कल्पित किया जाता है। यमक में शब्द की आवृत्ति होती है, परंतु अर्थ में भिन्नता होती है। श्लेष अलंकार में एक से अधिक अर्थ शब्द में चिपके रहते है।
- उपमा में किसी वस्तु, व्यक्ति, व्यंजन आदि की समानता के आधार पर किसी दूसरी वस्तु के साथ तुलना की जाती है। रूपक में उपमेय पर उपमान का अभेद रूप से आरोप किया जाता है। उत्पेक्षा में उपमेय में उपमान की संभावना या कल्पना की जाती है। दृष्टांत में उपमेय और उपमान वाक्य तथा उनके साधारण धर्म का बिम्ब-प्रतिबिम्ब भाव (भावसाम्य) दिखाई देता है।

4.8 स्वाध्याय :

1) निम्नलिखित अलंकारों के लक्षण और उदाहरण लिखिए।

   1. अनुप्रास 2. वक्रोक्ति 3. यमक 4. श्लेष

2) निम्नलिखित अलंकारों के लक्षण और उदाहरण लिखिए।

   1. उपमा 2. रूपक 3. उत्प्रेक्षा 4. दृष्टांत

3) शब्दालंकार और अर्थालंकारके बीच का अंतर स्पष्ट कीजिए।

4.9 क्षेत्रीय कार्य :

1) पाठ्यक्रम में समाविष्ट अलंकारों के अतिरिक्त अन्य भी अलंकारों के लक्षण और उदाहरण समझने का प्रयास करें।
2) मराठी और अंग्रेजी भाषा के अलंकारों का अध्ययन करें।
3) अलंकार संप्रदाय के आचार्यों के अलंकार संबंधी विचारों का संकलन कीजिए।
4) अलंकार सिद्धांत का अध्ययन कीजिए।
5) अलंकार और साहित्यिक सौंदर्य के अन्य साधन (रस, छंद, ध्वनि, शैली आदि का तुलनात्मक अध्ययन कीजिए।
6) साहित्यिक रचना पढ़ते समय रचनाकार द्वारा प्रयुक्त अलंकारों के प्रकार पहचानकर पंक्तियों की सूची बनाइए।

4.10 अतिरिक्त अध्ययन के लिए :

1) शास्त्रीय समीक्षा के सिद्धांत : डॉ. गोविंद त्रिगुणायात
2) काव्यशास्त्र : डॉ भगीरथ मिश्र
3) हिंदी व्याकरण रस-छंद-अलंकार सहित : डॉ. उमेशचंद्र शुक्ल
4) साहित्यशास्त्र : डॉ. चंद्रभानु सोनवणे
5) काव्यशास्त्र : विविध आयाम : सं. डॉ. मधु खराटे
6) हिंदी व्याकरण विमर्श : डॉ. ब्रज किशोर प्रसाद सिंह
7) छंद , अलंकार, रस : डॉ उर्मिला पाटिल
8) भारतीय तथा पाश्चात्य काव्यशास्त्र का संक्षिप्त विवेचन : डॉ. सत्यदेव चौधरी, डॉ. शांतिस्वरूप गुप्त

❑❑❑